HINDUSTANI 1938 G.K.V.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078089

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

~~078090~~

Acc. NO
708089

STOCK VERIFICATION
Central
Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12. 2. 52

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अप्रैल, १९३८

RT-0301

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (आक्सन)
२—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०
३—डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)
४—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम्० ए०, डी० एस्-सी० (लंदन)
५—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)
६—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

लेख-सूची

(१) **मीराबाई और वल्लभाचार्य**—लेखक, डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम्० ए०, डी० लिट्० (बनारस) १२१
(२) **आधुनिक उर्दू कविता में गीत**—लेखक, श्रीयुत उपेंद्रनाथ, 'अश्क' १३३
(३) **कविवर जटमल नाहर और उन के ग्रंथ**—लेखक, श्रीयुत अगरचंद नाहटा और भँवरलाल नाहटा १५९
(४) **प्राचीन वैष्णव-संप्रदाय**—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० (इलाहाबाद) १७५
(५) **अनारकली** (कविता)—रचयिता श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह १९३
(६) **तीन कविताएं**—रचयिता श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत .. १९६
(७) **शरत्चंद्र की प्रतिभा**—लेखक, श्रीयुत इलाचंद्र जोशी .. १९९
(८) **मंझन-कृत मधुमालती**—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी० .. .. .. २०७
(९) **स्फुट प्रसंग : हिंदुस्तानी**—लेखक, डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (आक्सन) २१३
(१०) **हिंदुस्तानी एकेडेमी का छठा साहित्य-सम्मेलन** तथा **डाक्टर ताराचंद का वक्तव्य** २१७
समालोचना २३१
लेख-परिचय २३९

वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078089

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ८ } अप्रैल, १९३८ { अंक २

मीराबाई और वल्लभाचार्य

[लेखक--डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम्० ए०, डी० लिट्० (बनारस)]

मीराबाई[1] की साधुसेवा प्रसिद्ध है। सत्संग उसे बहुत प्रिय था। रैदास को परंपरा उस का गुरु मानती है। प्रियादास के अनुसार गौड़ीय संप्रदाय के प्रसिद्ध जीव गोस्वामी को मीरा के लिए स्त्री का मुँह न देखने का अपना व्रत भंग करना पड़ा था। गोसाईं तुलसीदास के साथ मीराबाई के पत्र-व्यवहार की जनश्रुति प्रसिद्ध है। परंतु वल्लभाचार्य जी का नाम भी मीराबाई के साथ आता है, इस की चर्चा आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में होते नहीं देखी गई है। ऊपर जिन अन्य महात्माओं के नाम लिए गए हैं मीराबाई से उन का संबंध अनुकूलता का है, किंतु वल्लभाचार्य जी का संबंध कुछ भेदभाव-युक्त जान पड़ता है।

उन के इस भेद-भाव का पता वल्लभ-संप्रदाय की पुस्तक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से चलता है। इस वार्ता-पुस्तक की इकतालीसवीं वार्ता में लिखा है कि एक बार गोविंद दुबे नामक आचार्य महाप्रभु का एक 'निज सेवक' मीराबाई के घर ठहरा और वहां भगवद्वार्ता में रमा रह गया। वल्लभाचार्य जी ने जब इस बात को सुना तो (उन के पुत्र) श्री गुसाईं

---

[1] राजस्थान में नाम मीराँबाई है। हिंदी में 'मीरा' चल पड़ा है। उस के स्थान पर फिर 'मीराँ' करना उचित नहीं जान पड़ता।

पुस्तकालय
078089

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी (विट्ठलनाथ) ने, गोविंद दुबे को एक श्लोक लिख भेजा। जिस समय गोविंद दुबे के पास वह पत्र पहुँचा, उस समय वह संध्यावंदन कर रहा था। उसे पढ़ते ही गोविंद दुबे वहां से ऐसा चला कि पीछे फिर कर भी न देखा। मीराबाई ने कितना समझाने का प्रयत्न किया पर वह रुका नहीं।[1]

कृष्णदास अधिकारी की वार्ता से पता चलता है कि आचार्य महाप्रभु के कुछ 'निज सेवक' मीराबाई को नीचा दिखाने का भी प्रयत्न किया करते थे। उस से इस विरोध के कारण का भी कुछ पता चलता है।

कृष्णदास अधिकारी एक बार द्वारिका गया। वहां से रणछोड़ जी के दर्शन कर के वह मीराबाई के गाँव आया। वहां हरिवंश व्यास आदि कई प्रतिष्ठित वैष्णव ठहरे हुए थे। किसी को आए आठ, किसी को दस, किसी को पंद्रह दिन हो गए थे। कृष्णदास ने आते ही कहा, 'मैं चलता हूं'। मीराबाई के बहुत रोकने पर भी वह न रुका तब मीराबाई ने श्रीनाथ जी के लिए कई मुहरें भेंट देनी चाहीं। पर कृष्णदास ने ली नहीं और कहा कि तू आचार्य महाप्रभु की सेवक नहीं होती है इस लिए हम तेरी भेंट हाथ से छुएंगे भी नहीं। यह कह कर वह चल दिया।[2]

---

[1] "और एक समय गोविंद दुबे मीरांबाई के घर हुते। तहां मीरांबाई सों भगवद्वार्ता करत अटके। तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविंद दुबे मीरांबाई के घर उतरे हैं सो अटके हैं। तब श्री गुसाईं जी ने एक श्लोक लिखि पठायो सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायौ तब वह ब्रजवासी चल्यौ सो वहां जाय पहुँचौ, ता समय गोविंद दुबे संध्यावंदन करत हुते। तब ब्रजवासी ने आयकें वह पत्र दीनो। सो पत्र बांचि के गोविंद दुबे तत्काल उठे तब मीरांबाई ने बहुत समाधान कीयो परि गोविंद दुबे ने फिरि पाछें न देख्यौ।"--'चौराशी वैष्णवन की वार्ता', (गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, मुंबई) १६८५, पृ० १६२

[2] "सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गये हुते। सो श्री रणछोरजी के दर्शन करि कें तहां ते चले। सो आपन मीरांबाई के गांव आयौ, सो वे कृष्णदास मीरांबाई के घर गये, तहां हरिवंश व्यास आदि के विशेष सह वैष्णव हुते। सो काहू को आये आठ दिन काहू को आये दश दिन काहू को आये पंद्रह दिन भये हते। तिन की बिदा न भई हुती और कृष्णदास नें तौ आवत ही कही जो हूँतौ चलूँगौ। तब मीराँबाई ने कही जो बैठो तब कितनेक महौर श्रीनाथ जी को देन लागी। सो कृष्णदास नें न लीनो और कह्यौ जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभून की नाहीं होत ताते तेरी भेंट हाथ ते छूवेंगी नाहीं। सो ऐसे कहि कें कृष्णदास वहां ते उठि चले।"--८४ वार्ता, पृ० ३४३; डाक्टर धीरेंद्र वर्मा संकलित 'अष्टछाप', पृ० १६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि वल्लभाचार्य जी के अनुयायियों का उस से कुछ सीमा तक अवश्य ही इस कारण विरोध था कि वह भी उन की अनुयायिनी नहीं बनी। आरंभिक अवस्था में प्रत्येक संप्रदाय में स्वभावतया प्रचार और प्रदर्शन का भाव अधिक रहता है। वल्लभ-संप्रदाय भी इस बात का अपवाद नहीं था, यह स्वयं कृष्णदास अधिकारी के शब्दों से स्पष्ट है। कृष्णदास जब मीराबाई की भेंट फेर कर चला आया तो एक वैष्णव ने उस से कहा, तुम ने श्रीनाथ जी की भेंट नहीं ली। कृष्णदास ने कहा, भेंट की क्या पड़ी है। मीराबाई के यहां जितने भक्त बैठे थे उन सब की नाक नीची कर के भेंट फेरी है। इतने एक जगह कहां मिलते। ये भी जानेंगे कि एक समय आचार्य महाप्रभु का सेवक आया था। उस ने भी जब भेंट नहीं ली तो उस के गुरु की तो बात ही क्या होगी।[1]

जान पड़ता है कि मीराबाई को वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित करने के कुछ प्रयत्न हुए थे। बाद को तो वल्लभ-संप्रदाय को मेवाड़ में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। '२५२ वार्ता' के अनुसार मीरा की देवरानी अजबकुँवरबाई को विट्ठलनाथ ने अपनी शिष्या बना लिया[2] और श्रीनाथ का मंदिर बन जाने पर औरंगज़ेब के समय में तो मेवाड़ वल्लभ-संप्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र ही हो गया। किंतु स्वयं मीरा को दीक्षित करने का कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ। मीराबाई का पुरोहित रामदास भी '८४ वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित हो गया था। पर वह तब भी दीक्षित नहीं हुई। एक दिन रामदास मीराबाई के ठाकुर जी के आगे कीर्तन कर रहा था। उस ने कीर्तन में आचार्य महाप्रभु का पद गाया। उस के समाप्त होने पर मीराबाई ने कहा, श्री ठाकुर जी का पद गावो। इस पर आचार्य महाप्रभु का अपमान समझ कर रामदास बड़ा क्रुद्ध हुआ और मीराबाई को बुरा-भला कहता हुआ उस के यहां से अपना कुटुंब ले कर चला गया। मीराबाई के बुलाने पर भी वह उस के यहां न गया। मीराबाई ने घर बैठे ही रामदास को वृत्ति देनी चाही, पर उस ने यह कह कर नहीं ली कि 'आचार्य

---

[1] "तब कृष्णदास ने कह्यौ जो भेंट की कहां है परि मीरांबाई के यहां जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाक नीचे करि कें भेंट फेरी है। इतने इक ठोरे कहां मिलते। यहहू जानेंगे जो एक बेर शूद्र श्री आचार्य जी महाप्रभून कौ सेवक आयौ हुतो ताने भेंट न लीनी तो तिनके गुरू की कहा बात होयगी।"—'८४ वार्ता', पृ० ३४३; 'अष्टछाप', पृ० १९

[2] '२५२ वार्ता', पृ० १३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्रभु पर तेरी 'समत्व' दृष्टि नहीं है, तेरी वृत्ति ले कर हमें क्या करना है? हमारे तो सर्वस्व आचार्य महाप्रभु ही हैं।'[१]

ये उद्धरण इतने विस्मयकारक हैं कि सहसा इन पर विश्वास करने का जी नहीं चाहता। इस लिए देखना चाहिए कि 'वार्ता' और उस में दी हुई ये घटनाएं कहां तक प्रामाणिक हैं।

'वार्ता' की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को जाँचने का कोई विशेष साधन उपलब्ध नहीं है। उस का रचयिता कौन है, इस का भी निश्चित ज्ञान हमें नहीं है। स्वयं 'वार्ता' में कहीं उस के लेखक का नाम नहीं दिया हुआ है। इधर कुछ लोगों का विश्वास चला आता रहा है कि यह वल्लभाचार्य के पौत्र और विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ की लिखी हुई है जिन का रचना-काल पंडित रामचंद्र जी शुक्ल के अनुसार सं० १६२५ से १६५० तक माना जा सकता है। (हिंदी-शब्दसागर, भूमिका, पृ० २०६) सं० १६०६-१६११ की नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में हरिराय के नाम से एक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (सं० ११५-बी) का उल्लेख है। आदि-अंत के अवतरणों से मालूम पड़ता है कि यह भी थोड़े से भेद से गोकुलनाथ की समझी जाने वाली वार्ता ही है। पर रिपोर्ट वाली '८४ वार्ता' के आदि-अंत में भी रचयिता का नाम नहीं दिया हुआ है। रिपोर्ट के अनुसार, हरिराय आचार्य जी का शिष्य और उन के पुत्र विट्ठलनाथ तथा पौत्र गोकुलनाथ दोनों का समकालीन था। '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में दी हुई गंगाबाई क्षत्राणी की वार्ता से पता चलता है कि गंगाबाई की मृत्यु के समय सं० १७३६ में हरिराय विद्यमान था। उस समय

---

[१] "सो एक दिन मीरांबाई के श्री ठाकुर जी कीर्तन करत हुते सो रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के पद गावत हुते तब मीरांबाई बोली जो दूसरे पद श्री ठाकुर जी को गावो तब रामदास जी ने कह्यो मीरांबाई सो जो अरे दारी रांड यह कोन को पद है यह कहा तेरो खसम को मूड़ है जो जा आज ते तेरो मुँहडौ कबहूं न देखूँगो तब तहां ते सब कुटुम्ब को लेकें रामदास जी उठि चले तब मीरांबाई ने बहुतेरे कह्यौ परि रामदास जी रहे नाहीं... मीरांबाई नें बहुत बुलाये परि वे रामदास जी आये नाहीं तब घर बैठे भेंट पठाई सोई फेरि दीनी और कह्यौ जो रांड तेरो श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्त्व नाहीं जो हम को तेरी वृत्ति कहा करनी है। हमारे तौ श्री आचार्य जी महाप्रभू सर्वस्व हैं।"––८४ वार्ता, पृ० २०७-२०८; 'पुष्टि दृढ़ाव' नामक निबंध में भी जो '२५२ वैष्णवन की वार्ता' के अंत में छपा है इस प्रसंग का उल्लेख है।––पृ० ५१९–५२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मेवाड़ में श्रीनाथ के मंदिर का महंत था। इस में संदेह नहीं कि हरिराय तथा गोकुलनाथ ने ब्रजभाषा गद्य में अच्छी टीकाएं लिखी हैं, जिन की भाषा 'वार्ता' ही के समान सुंदर और सजीव है। परंतु हरिराय के 'भावना', 'संन्यास-निर्णय', 'निरोध लक्षण' और 'शिक्षा-पत्री' तथा गोकुलनाथ के 'सर्वोत्तम स्तोत्र टीका' आदि ग्रंथों में लेखकों के नाम स्पष्ट रूप से दिए हुए हैं, जब कि वार्ताओं में किसी का नाम इस प्रकार नहीं दिया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि 'वार्ता' किसी एक व्यक्ति की लिखी हुई नहीं है। संभवतः बहुत सी वार्ताएं मूल-रूप में स्वयं आचार्य जी के मुख से सुनी गई होंगी। कुछ अन्य लोगों ने अपनी आँखों देखी कही होंगी। फिर परंपरा से कानोंकान चली आती होंगी। गोकुलनाथ या हरिराय इन के लेखक तो क्या संग्रहकर्ता भी थे या नहीं, नहीं कहा जा सकता। परंतु इस से मीराबाई-संबंधी इन प्रसंगों की प्रामाणिकता में कोई अंतर नहीं आता। इन प्रसंगों के पीछे यदि ऐतिहासिक आधार न होता तो ये पीछे से 'वार्ता' में न आ पाते। मीरा का महत्व सर्वकालीन है। ऐसे व्यक्तियों को सब लोग अपनाने का प्रयत्न करते हैं। समय की दूरी जब तुच्छ कलहों की तात्कालिक तीव्रता को शिथिल कर डालती है तब ऐसे व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने की इच्छा होती है, मतभेद दिखाने की नहीं। उस से जान पड़ता है कि इन बातों के पीछे अवश्य ऐतिहासिक आधार है। और ये इस समय की लिखी या कही हुई हैं जब कि अभी ताज़ी ही थीं। इन में कोई बनावट भी नहीं जान पड़ती। यदि कोई बनावट हो तो अधिक से अधिक इतनी ही कि रामदास से मीराबाई के लिए जो दुर्वचन कहलाए गए हैं, वे अतिरंजित हों। कृष्णदास वाला प्रसंग तो इतना निश्छल है कि इस के सर्वथा सत्य होने में कोई संदेह ही नहीं जान पड़ता।

ऐतिहासिक दृष्टि से इन घटनाओं में कोई असंभवता भी नहीं। वल्लभाचार्य जी का जन्म सं० १५३५ में हुआ था और गोलोकवास सं० १५८७ में। ये तिथियां संप्रदाय में भी मान्य समझी जाती हैं और उस के बाहर भी। मीराबाई पहले महाराणा कुंभ की स्त्री समझी जाती थी। परंतु अब मुंशी देवीप्रसाद, श्री हरविलास सारड़ा और महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजस्थान के ये तीनों प्रमुख इतिहासविद् उसे एकमत हो महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र कुमार भोजराज की स्त्री मानते हैं। 'वार्ता' भी समय की दृष्टि से इस को पुष्ट करती है। मीरा के संबंध में अब तक जो कुछ ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं, उन से इतना निश्चित है कि मेड़ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के राव वीरमदेव के छोटे भाई रतनसिंह की इस पुत्री का जन्म सं० १५५५ के लगभग, विवाह १५७३ के लगभग, वैधव्य १५७५ के लगभग, और निधन १६०३ के लगभग हुआ।[1] इस प्रकार 'वार्ता' में दी हुई ऊपर की घटनाओं के सत्य होने में कोई ऐतिहासिक व्यवधान नहीं है। क्योंकि मीरा और आचार्य जी दोनों समकालीन थे।

'वार्ता' के ऊपर दिए हुए उद्धरणों से मीराबाई के महत्व पर बहुत प्रकाश पड़ता है। वह सब संतों का, संप्रदाय-भेद का विचार किए बिना, समान-रूप से आदर करती थी। उस की बड़ी उदार धार्मिक भावना थी। वल्लभ-संप्रदाय की न होने पर भी उस ने उन के मंदिर में भेंट भेजनी चाही। उस के विरोधियों ने भी उस से कटु वचन नहीं कहलाए। वह बड़ी सहिष्णु थी। कृष्णदास ने उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न किया, रामदास ने उसे गालियां तक दीं, फिर भी उसे उद्विग्न नहीं कर सके। रामदास को तो वह घर बैठे वृत्ति देने तक को तैयार थी। उस के महत्त्व को वल्लभाचार्य जी स्वयं जानते होंगे। किसी सामान्य व्यक्ति को दीक्षा के लिए तैयार न करा सकने पर उन के भक्तों को उतनी खीझ न होती जितनी 'वार्ता' से प्रकट है।

वल्लभाचार्य जी भी उस काल के बहुत बड़े महात्मा थे। मीरा के साथ उन के भक्तों के बेढंगे व्यवहार में उन का हाथ कदापि नहीं हो सकता, किंतु मीरा से उन का अवश्य ही गहरा तात्त्विक भेद था, जिस ने शिष्यों में जा कर दूसरा रूप धारण कर लिया। 'गोविंद दुबे की वार्ता' से पता चलता है कि यह भेद इतना गहरा था कि उस के कारण मीराबाई से अपने अनुयायियों का संसर्ग भी वल्लभ-संप्रदाय के कुछ आप्तजन अवांछनीय समझते थे।

मीराबाई ने भी मतभेद को छिपाया नहीं है। उस की ओर से हमारे सामने दो अर्थ-गर्भित तथ्य हैं। जब कि सूरदास सरीखे महात्मा जो स्वयं दीक्षा देते थे, जिन के स्वयं बहुत से भक्त थे, वल्लभाचार्य जी के सेवक हो गए[2] तब भी मीरा ने उन से दीक्षा नहीं ली। दूसरे वल्लभाचार्य जी के पदों को मीरा अपने ठाकुर जी के उपयुक्त

---

[1] ओझा, 'राजपूताने का इतिहास', पृ० ६५०–६५१

[2] "गऊघाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतौ। सो सूरदास जी स्वामी हैं आप सेवक करते सूरदास जी भगवदीय हैं। गान बहुत आछौ करते ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते"—'८४ वार्ता', पृ० २७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं मानती थी। परिणाम इस से यह निकलता है कि मीराबाई पर पहले ही से कोई गहरा रंग चढ़ा हुआ था, जो वल्लभ-संप्रदाय के रंग से कदापि मेल नहीं खाता था। इस प्रकार '८४ वार्ता' के ये उल्लेख मीरा के मत को समझने में प्रकारांतर से हमारी मदद करते हैं।

वल्लभाचार्य जी के पुष्टिमार्ग में कृष्ण-भक्ति ही सार वस्तु है। इसी लिए वल्लभ-संप्रदायी कवियों ने कृष्णावतार की लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है। 'अष्टछाप' के यशस्वी कवियों की रचनाएं जिन्हों ने पढ़ी हैं, वे इस बात को जानते हैं।

इस में संदेह नहीं कि प्रत्यक्षतः मीराबाई भी कृष्णभक्त है। उस की वाणी में स्थल-स्थल पर कृष्ण का उल्लेख है। उस का वहुत-सा अंश कृष्ण ही को संवोधित कर कहा गया है। मीरा ने स्वयं कहा है कि 'मोरमुकुटधारी' 'नंदनंदन' ही मेरे पति हैं। 'गिरिधर गोपाल' के अतिरिक्त किसी दूसरे से वह अपना संबंध ही नहीं मानती थी।[1] कृष्ण ही की बाँकी-साँवली छवि, टेढ़ी अलकों और त्रिभंगी मूर्ति पर उस की लुभाई हुई आँखें अटकी रहती थीं।[2]

अपने आप को गोपी कल्पित कर वह भाग्यशालिनी गोपियों के भाग्य पर ईर्ष्या करती है —

श्याम म्हांसूँ ऐंडो डोले हो।
औरन सूं खेलै धमार म्हांसूं मुखहू ना बोलै हो।
म्हारी गलियां ना फिरै वाकें आंगन डोलै हो॥
म्हारी अंगुली ना छुवै वा की बहियां मोरै हो।
म्हारो अंचरा ना छुवै वाको घूंघट खोलै हो।
मीरा के प्रभु सांवरो रंग रसिया डोलै हो।[3]

---

[1] मेरे तो गिरिधर गुपाल दूसरा न कोई।...
जा के सिर मोरमुकुट मेरो पति सोई॥—बानी, पृ० २४

[2] निपट बंकट छवि अटके मेरे नैना निपट बंकट छबि अटके।
देखत रूप मदनमोहन को पियत मयूखन मटके।
वारिज भँवर अलक टेढ़ी मनो अति सुगंध रस अटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी करि मुरली टेढ़ी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी गिरिधर नागर नट के॥

[3] बानी, पृ० ५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु यदि गहरे पैठ कर देखा जाय तो जान पड़ेगा कि उस का उतना ध्यान अवतार की ओर नहीं है जितना ब्रह्म की ओर। जिस नंद-नंदन गिरिधर गोपाल के विरह में वह 'अँसुअन की माला'[१] पोया करती है, जिस की बाट जोहते उस की 'छमासी' रात बीतती है[२], जिस के रूप पर मुग्ध हो कर उसे लोक परलोक कुछ नहीं सुहाता[३], जिस से वह अपनी बाँह मुड़वाना और घूँघट खुलवाना चाहती है[४], जिस के लिए वह घायल हो कर तड़पती फिरती है[५], जिस को वह 'छप्पन भोग' और 'छतीसों व्यंजन' परसती है[६] जिस 'मिठ-बोला' के लिए विकलता ने उस की 'दिल की घुंडी' खोली है[७] वह पूर्ण ब्रह्म है।[८] उसी निर्गुण का सुरमा वह अपनी आँखों में लगाती है।[९] वह उसे पूर्ण-रूप से अपने अंदर देखती है।[१०] उस निर्गुण ब्रह्म का 'गगन-मंडल' में निवास है।[११] गगन-मंडल में बिछी हुई सेज पर ही प्रिय को मिलने की उत्कंठा वह अपने मन में रखती है।[१२] सुरति-निरति का वह दीपक बनाती

---

१ इक विरहिनि हम देखी अँसुवन की माला पोवै।--बानी, पृ० २३, ५१

२ एक टकटकी पंथ निहारूं भई छमासी रैन।--वही, पृ० २३,५३

३ जब से नंदनंदन दृष्टि पड़्यो माई।
तब से लोक परलोक कछू ना सुहाई।।--वही, पृ० २९,६७

४ म्हारी अँगुली ना छुवै वाकी बहियां तोरै हौ।
म्हारो अँचरा ना छुवै वाको घूँघट खोलै हौ।।--वही, पृ० ५३,२

५ घायल फिरूं तड़पती पीर नहिं जाने कोइ।।--वही, पृ० ५१-५२

६ छप्पन भोग छत्तीसों बिंजन सनमुख राखो थाल जी।--वही, पृ० ५२

७ साजन घर आवो मीठा बोला।.....
तुम देख्यां बिन कल न परत है, कर धर रही कपोला।
मीरा दासी जनम जनम की, दिल की घुंडी खोला।।--वही, पृ० १७,३२

८ मात पिता तुम को दियो तुम हीं भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को मन में नहिं आनों हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म पूरन पद दीजै हो।--वही, पृ० ८, १२

९ सुरत सुहागिन नार... निरगुन सुरमो सार।--वही, पृ० ३१,७२

१० मेरे पिया मोहि माँहि बसत हैं, कहूं न आती जाती।--वही, पृ० १०,१६
औरों के पिय परदेस बसत हैं लिख लिख भेजैं पाती।
मेरे पिया हिरदे में बसत हैं गूँज करूं दिन राती।। --वही, पृ० २७,६२

११ गगन-मंडल में सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।--वही, पृ० ४,३

१२ तेरा कोइ नहिं रोकनहार, मगन होय मीरा चली...।
ऊंची अटरिया लाल किवड़िया, निरगुण सेज बिछी...।
सेज सुखमणा मीरा सोवै, सुभ है आज घरी।।--वही, पृ ११,१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जिस में प्रेम के बाजार में बिकने वाला (अर्थात् प्रेम का) तेल भरा रहता है और मनसा (इच्छा) की बत्ती जलती रहती है।[१] उस का प्रेम-मार्ग उसे ज्ञान की गली में ले जाता है।[२] उस का मन सुरत की आसमानी सैर में लगा हुआ है।[३] वह अगम के देस जाना चाहती है, जहां प्रेम की वापी में शुद्ध आत्मा हंस क्रीड़ा किया करते हैं।[४] राणा को डाट कर वह कहती है कि मैं आज की नहीं तब की हूं जब से सृष्टि बनी है।[५] कबीर के मार्ग की भाँति उस की भी ऊँची-नीची रपटीली राह है, जिसे वह 'झीना पंथ' (सूक्ष्म ज्ञान-मार्ग) कहती है।[६] निर्गुणियों का अभ्यास मीरा के निम्न-लिखित पद में आ गया है—

> नैनन बनज बसाऊं री जो मैं साहिब पाऊं री।
> इन नैनन मोरा साहब बसता डरती पलक न लाऊं री।
> त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहां से झाँकी लगाऊं री॥
> सुन्न महल में सुरति जमाऊं सुख की सेज बिछाऊं री।
> मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊं री॥[७]

इस में त्रिकुटी-ध्यान और भ्रू-मध्य-दृष्टि की ओर स्पष्ट संकेत है। मीरा का ध्येय है 'पूरन पद'।[८] निरंजन का वह ध्यान करती है।[९] अनाहत नाद को सुनती है[१०] और

---

१ सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की कर बाती।
प्रेम हटी का तेल बना ले जगा करे दिनराती॥—बानी, पृ० १०,१६

२ मान अपमान दोउ धर पटके निकली हूं ज्ञान गली।—वही, पृ० ११,१३

३ मीरा मनमानी सुरति सैल असमानी।—वही, पृ० १६,४१

४ चलो अगम के देस काल देखत डरै।
वहां भरा प्रेम का हौज हंस केलां करै॥—वही, पृ० १३

५ आज काल की मैं नहिं राणा जद यह ब्रह्मंड छायो।—वही, पृ० ६७,३२

६ ऊंची नीची राह रपटीली, पांव नहीं ठहराइ।
सोच सोच पग धरूं जतन से बार बार डिग जाइ॥
ऊंचा नीचा महल पिया का हम से चढ़्या न जाइ।
पिया दूर पंथ ह्मांरा झीणा सुरत झकोला खाइ॥—वही, पृ० २७

७ वही, पृ० ३०,६८। निर्गुणियों के अभ्यास के लिए देखिए बड़थ्वाल-'निर्गुण स्कूल आव् हिंदी पोयट्री', (इंडियन बुकशाप, बनारस), पृ० १३१-१५२

८ तुम प्रभु पूरन ब्रह्म, पूरन पद दीजै हो।—बानी, पृ० ८,१२

९ जा को नाम निरंजन कहिए, ताको ध्यान धरूंगी हो।—वही पृ० २४,५४

१० बिन करताल पखावज बाजे अनहद की झंकार रे।—वही, पृ० ४२,१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आदि अनादि साहब' को पाकर भवसागर से तर जाती है।[1]

यह कबीर की निर्गुण-भावना के सर्वथा मेल में है। उसी तात्पर्य के सहित कबीर की प्रायः सारी शब्दावली मीरा में मिलती है। कबीर से यदि मीरा में कोई अंतर है तो यही कि मीरा को मूर्त्तियों से चिढ़ नहीं। प्रियादास[2] ने तो उसे अपूर्व मूर्ति-पूजक माना है। उस के अनुसार, पिता के घर में ही उस का गिरिधर लाल की मूर्ति से प्रेम हो गया था। जब विवाहोपरांत पतिगृह जाने लगी तब उस ने सब वस्त्राभूषण छोड़ माता-पिता से गिरिधर लाल की मूर्ति माँगी, उसी को अपना पति समझा और अंत में उसी में समा गई।[3] कबीर के साथ इस सादृश्य और भेद का कारण यह है कि उस ने रामानंद के शिष्य और कबीर के गुरुभाई रैदास से अथवा उस की वाणी से आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की थी। मीरा के

---

[1] साहब पाया आदि अनादी नातर भव में जाती।--वही, पृ० १,१

[2] मेरतौ जनम भूमि झूमि हित नैन लगे,
पगे गिरधारीलाल पिताहीं के धाम मैं।
राना कै सगाई भई करी ब्याह सामा नई,
गई मति बूड़ि वा रँगीले घनश्याम मैं।
भाँवरैं परत मन साँवरे रूप माँझ
ताँवरैं सी आवैं चलिबै कौं पति ग्राम मैं।
पूछैं पिता-माता "पट आभरन लीजियै जू"
लोचन भरत नीर कहा काम दान मैं॥
--रूपकला-संपादित "श्रीभक्तमाल" (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२६), पृ० ७२०

[3] देवौ गिरिधरलाल जौ निहाल कियौ चाहौ,
और धन माल सब राखिए उठाय कै।
बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ़्यौ भारी,
रोय मिली महतारी, कही "लीजिये लड़ाय कै॥"
डोला पधराय दृग दृग सों लगाय चलीं,
सुख न समाय चाय, प्रानपति पाय कै।
--वही, पृ० ७२१

सुन बिदा होन गई राय रणछोर जू पै
छांडौं राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै।
--वही, पृ० ७२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम से मिलने वाली वाणी में कई स्थान पर रैदास उस का गुरु बताया गया है।[1] कबीर के समकालीन और उस से पहले के कुछ संतों तथा कबीर के अतिरिक्त रामानंद जी के अन्य शिष्यों की यह विशेषता जान पड़ती है कि वे निर्गुण के प्रति अपनी ऊँची से ऊँची अध्यात्म-भावना को मूर्तियों के समक्ष प्रकट करने में कोई प्रत्यक्ष विरोध नहीं मानते थे। नामदेव विठोबा की मूर्ति के सामने घुटने टेक कर निर्गुण निराकार की स्तुति करता था।[2] इसी प्रकार रामानंद जी के अन्य शिष्य शालग्राम के प्रति आदर-भावना रखते थे। मीरा में भी यही बात थी। उस पर निर्गुण-भावना का रैदासी रंग चढ़ा हुआ था। उस की सगुण-भावना निर्गुण-भावना का प्रतीक मात्र थी। वह अवतार भावना की विरोधिनी नहीं है परंतु उधर उस का उतना ध्यान नहीं। वल्लभ-संप्रदाय के कवियों की भाँति उस का उद्देश्य कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना नहीं, अपनी अनुभूति का प्रकाशन करना था। वह पर-ब्रह्म-कृष्ण की गोपी थी। कबीर की भाँति वह प्रेम-लक्षणा अर्थात् दशधा भक्ति की मानने वाली थी, जो निर्गुण-मार्गियों की विशेषता है। जो कुछ रैदास ने राम का नाम ले कर कहा है वह मीरा ने कृष्ण का नाम ले कर। कदाचित् कृष्ण-नाम से प्रेम का कारण यह हो कि वह जन्मी भी कृष्ण-भक्त परिवार में थी और ब्याही भी कृष्ण-भक्त परिवार में। उस के पति के यशस्वी पूर्वज महाराणा कुंभ ने तो राधामाधव संबंधी

---

[1] रैदास संत मिले मोहि सतगुरु दीन्ही सुरत सहदानी।——बानी, पृ० २०,४१
गुरु रैदास मिले मोहि पूरे धुर से कलम भिड़ी।
सतगुर सैन दई जब आके जोत में जोत रली।——वही, पृ० ३६,१४
मीरा नै गोविंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास।——वही, पृ० ३७,१

रैदास का समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। उसे पीपा (लगभग १३५०–१४००सं०)का समकालीन और रामानंद का शिष्य मानते हुए इस संबंध में जो कुछ अनुमान लगाया जा सकता है उस से मेरी सम्मति में, उस का मीराबाई का समसामयिक होना भी घटित नहीं होता। इस लिए संभव है कि मीराबाई ने उस के मुख से शिक्षा ग्रहण न कर उस की रची 'वाणी' से शिक्षा ग्रहण की हो। गरीबदास (लगभग सं० १७७४-१८३५) ने कबीर को और चरनदास (जन्म लगभग सं० १७६०) ने 'भागवत' के शुकदेव को अपना गुरु माना है। इन असमसामयिक गुरुओं के स्पष्ट उदाहरणों को हम इसी अर्थ में ठीक समझ सकते हैं। रैदास और मीराबाई के समय पर विचार एक अलग विषय है।

[2] फ़र्कुहर, 'आउटलाइन ऑव् दि रिलिजस लिटरेचर ऑव् इंडिया', पृ० ३००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर काव्य 'गीतगोविंद' पर सुंदर टीका उस समय लिखी थी जब कि वल्लभ-संप्रदाय अभी अस्तित्व में नहीं आया था।

यह भी छिपा नहीं है कि वल्लभ-संप्रदाय भी प्रेम-मार्ग है परंतु नवधा भक्ति का, जो निर्गुणोपासना का विरोधी है। 'भ्रमरगीत' में सगुण की आराधिका गोपियों के हाथों सूरदास ने निर्गुण-ज्ञानी उद्धव की जो दुर्दशा कराई है उस में निर्गुणोपासना के प्रति वल्लभ-संप्रदाय की विरोध-भावना का स्पष्ट प्रतिबिंब है। यहां पर गोपियों के चुटीले तर्क की एकाध बानगी दे देना काफ़ी होगा––

१––सुनिहै कथा कौन निर्गुण की रचि पचि बात बनावत।
सगुन सुमेरु प्रगट देखियतु तुम तृन की ओट दुरावत॥
२––रेख न रूप बरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत।
अपनी कहौ, दरस ऐसे को तुम कबहूँ हौ पावत॥

वल्लभाचार्य जी और मीरा के बीच गहरे तात्त्विक मतभेद के ही आधार पर हम 'वार्ता' में लिखित उपर्युक्त घटनाओं को उन के उचित रूप में समझ सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक उर्दू कविता में गीत

[लेखक---श्रीयुत उपेंद्रनाथ, 'अश्क']

गीतों का युग

इन पंक्तियों के लेखक ने अन्यत्र[1] इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि उर्दू कविता में एक नए युग का आविर्भाव हुआ है। एक नए रंग की कविता लिखी जाने लगी है। जिस प्रकार हिंदी कविता नायिका-भेद और राजा-महाराजाओं की स्तुति तथा विलास-भावनाओं के संकुचित युग से निकल कर मुक्ति के महान आकाश में चिड़ियों की भाँति विविध स्वरों से चहकने लगी है, उसी प्रकार उर्दू शायरी भी शमा-परवाने,[2] गुलो-बुलबुल[3] महबूबो-माशूक़[4] के जाल से निकल कर नवीन भावनाओं के साथ जगत में प्रवेश कर रही है।

एक ही तरह की ग़ज़लों का दौर ख़त्म हुए भी देर हो चुकी। अब तो कवि नज़्मों की दुनिया से भी आगे निकल कर कविता के एक नए संसार में आ गए हैं। बड़े-बड़े शायर छोटे-छोटे सीधे और सरल गीतों में हृदय के कोमलतम उद्गारों को व्यक्त कर के साहित्य में नई गंगा बहा रहे हैं। यह गीत पंजाब में सर्वसाधारण की ज़बान पर चढ़े हुए हैं और कुछ तो इतने लोकप्रिय हुए हैं कि गले में अमृत रखने वाले अपने मीठे, मादक स्वरों से गाते हुए इन से पंजाब की महफ़िलों को गुंजा देते हैं।

सुंदरता के जादू से दिलों को मोह लेने वाले इन गीतों को जन्म देने का श्रेय जालंधर की नररत्न-प्रसू भूमि में जन्म लेने वाले मौलाना अबुल असर 'हफ़ीज़' को है। अपने इस रंग के विषय में वह स्वयं ही लिखते हैं—

---

[1] 'विशाल-भारत', दिसंबर १९३७

[2] दीपक और शलभ।

[3] फूल तथा बुलबुल। [4] प्रिय-प्रेयसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया पाबंदे नै नाले को मैं ने ,

यह तरज़े ख़ास है ईजाद मेरी ।[1]

और है भी ठीक। उन्हों ने वे गीत लिखे हैं जिन में नाले गीत बन गए हैं और आहें तानें। "मन है पराए बस में" शीर्षक से उन का गीत मेरे इस कथन का प्रमाण है।

साहित्य में भी क्रांति का पैग़ाम लाने वाले की क़द्र पहले कठिनाई से ही होती है। उन्हों ने अपना इस प्रकार का पहला गीत 'कान्ह की बंसरी' लिख कर जब लाहौर के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक में भेजा तो उस के संपादक ने, जो 'हफ़ीज़' साहब के घनिष्ट मित्र थे, उन को 'इस बेगार टालने' पर बहुत उलाहना दिया, और गीत को आकर्षक स्थान न देकर एक कोने में छाप दिया। किंतु जादू वह जो सर पर चढ़ कर बोले। दूसरे ही दिन जब 'हफ़ीज़' साहब ने अपना वही गीत जादू भरी आवाज़ में गा कर सुनाया तो महफ़िल झूम गई। उक्त संपादक महोदय भी वहीं बैठे थे। उन्हों ने अपनी ग़लती को महसूस किया और जाना कि इस प्रकार के छोटे-छोटे गीतों की ईजाद एकदम फ़ज़ूल नहीं और साहित्य के ख़ज़ाने को और भी समृद्ध करने वाली है। दूसरे अंक में उन्हों ने इस गीत को दोबारा, संपादकीय नोट में उस की विशेष प्रशंसा करते हुए छापा, और महीनों वह गीत लोगों की ज़बान पर रहा।

'शाहनामा-इस्लाम' के लेखक, फ़िरदौसिए इस्लाम श्री 'हफ़ीज़' इस रंग में लिखते हैं—

बंसरी बजाए जा
कान्ह मुरली वाले नंद के लाले
बंसरी बजाए जा
प्रीत में बसी हुई अदाओं[2] से
गीत में बसी हुई सदाओं[3] से
ब्रजबासियों के झोंपड़े बसाए जा
सुनाए जा सुनाए जा
कान्ह मुरली वाले नंद के लाले

---

[1] मैं ने नालों को लय में बंद कर दिया है और यह मेरी ख़ास ईजाद है।
[2] भावभंगियों। [3] आवाज़ों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंसरी बजाए जा
बंसरी की लय नहीं है आग है
और कोई शय नहीं है आग है
प्रेम की यह आग चार सू लगाए जा
सुनाए जा सुनाए जा
कान्ह मुरली वाले नंद के लाले
बंसरी बजाए जा

इस के बाद गीतों के तूफ़ान में पंजाब का कवि-समाज बह चला, और बरबस बह चला। इस गीत का प्रभाव अभी तक इतना बाक़ी है कि 'दर्दे ज़िंदगी' और 'हदीस अदब' के रचयिता हज़रत 'अहसान दानिश' ने हाल ही में लिखा है—

ब्रजवासियों में शाम, बंसरी बजाए जा।
मस्तियां उबल पड़ें
मदभरी सदाओं से,
प्रेमरस बरस पड़े
मनचली हवाओं से।
मुसकरा रही है शाम, श्याम मुसकाराए जा।
ब्रजवासियों में शाम, बंसरी बजाए जा।
गोपियों को सुध नहीं
मस्तियों में जोश है,
रागरंग में है ग़र्क़[1]
रंग मयफ़रोश[2] है।
झूमती है कायनात,[3] झूमकर झुमाए जा।
ब्रजवासियों में शाम, बंसरी बजाए जा॥

---

[1] डूब गया है। [2] मदिरा बेचने वाला।
[3] सृष्टि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण के गीत

'हफ़ीज़' साहब के इस गीत के बाद गोकुल के इस प्रेमावतार ने, कविता के संसार को चिर जाग्रत रखने वाले बंसरीवाले ने राग की दुनिया में अगणित गीतों का निर्माण कराया, और सांप्रदायिकता के गढ़ पंजाब के उर्दू कवियों से कराया। सच है शायरों का कोई मज़हब नहीं, यदि कोई धर्म है तो प्रेम। आज यदि कवियों के हाथ में विश्व के संचालन का भार और अधिकार हो तो देश और धर्म की तंग दीवारें खड़ी न रह पाएं और दुनिया की चप्पा-चप्पा ज़मीन भाई-भाई के ख़ून से तर न हो।

मौलवी मक़बूल अहमद हसेनपुरी, जो उर्दू में अपने मीठे-मीठे गानों के कारण प्रसिद्ध हैं, और जिन की कविता पर ब्रजभाषा का रंग ग़ालिब है, 'हुमायूं' नाम की उर्दू पत्रिका में लिखते हैं—

बंसीधर महराज हमारे
हृदय-कुंज में बंसी बजाओ
सब भक्तों के राजा हो तुम
प्रेम-गीत से मन को रिझाओ
तुम सब प्यारों के प्यारे हो
आओ प्रीत की रीत सिखाओ
राधा-स्वामी
अंतर्यामी
परमानंद की राह सुझाओ
बंसीधर महराज हमारे
हृदय-कुंज में बंसी बजाओ

और 'अदबे-लतीफ़' पत्रिका के एक दूसरे गीत में आप विह्वल हो कर पुकार उठे हैं—

अब तो श्याम से उलझे नैन
कोई बुलाए हरि के घर से
बंसी बजाए प्रेम-नगर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल रूठा अब दुनिया भर से
मन की डोर लगी ईश्वर से
क्या जानूं आई है रैन
अब तो श्याम से उलझे नैन

भक्तों की इस भक्ति से परे, जिस का ऊपर के गीतों में प्रदर्शन किया गया है, भगवान् कृष्ण से संबंधित कविता का एक और रूप भी है, इस में जुदाई के गीत लिखे गए हैं। जब कृष्ण गोकुल को छोड़ कर मथुरा जा बसे तो उन के विरह में गोपियां जिस प्रकार तड़पती थीं उस का पता केवल इस एक पद से लग जाता है, जब ऊधव के आने पर कोई गोपी रो कर, सिहर कर, कह उठती है—

ऊधव ब्रज की दसा निहारो

और इसी विरह की उदासी में—जब मथुरा से कोई संदेसा नहीं आता और तड़प तड़प कर सवेरा करने वाली गोपी फिर संध्या के आने पर विह्वल हो उठती है। उस का चित्र 'नश्तर' जालंधरी ने एक गीत में खींचा है —

तड़प-तड़प कर भोर हुई थी
ना आया पैग़ाम
कन्हैया
उजड़ चला मन-ग्राम
बादल गरजे बिजली चमके
उठी घटाएं शाम
कन्हैया
उजड़ चला मन-ग्राम
आँख में आँसू कसक हृदय में
फिर आई है शाम
कन्हैया
उजड़ चला मन ग्राम

पंजाबी भाषा के प्रख्यात कवि लाला धनीराम जी ने भी 'आह्वान' शीर्षक एक कविता में श्याम का आवाहन करते हुए लिखा है —

३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजा
शाम बिहारी आजा
शाम घटा लाइयां घनघोरा
बाग उठा लये सरते मोरां
हुन तां शामां तेरियां लोड़ां
बुझे दिला विच जोत जगाजा
आजा
शाम बिहारी आजा[1]

और हिंदी की भाषा में तो मीराबाई, सूरदास आदि के गीतों में न जाने कितने आवाहन, कितनी मनुहारें और कितने अभिसार भरे पड़े हैं। उर्दू में भी बीसियों ऐसे गीत लिखे गए हैं जिन में घनघोर घटाओं, पुरशोर हवाओं और उन्मत्त मोरों को देख कर कोई गोपी अपने चितचोर श्याम को पुकार उठती है। उन गीतों में से मैं किसी युवक रामप्रसाद 'नसीम' का एक गीत देता हूं। कितना दर्द-भरा और मर्म-स्पर्शी है!

घटाएं घिर आईं घनघोर
हवाएं चलती हैं पुरशोर
मस्त पपीहा
बेसुध कोयल
और पागल है मोर
घटाएं घिर आईं घनघोर
बिजली चमके
बादल बरसे
आन मिलो चित-चोर
घटाएं घिर आईं घनघोर
हवाएं चलती हैं पुरशोर

---

[1] ऐ मेरे श्याम बिहारी तू आजा।
ऐ श्याम घनघोर घटाएं छाई हैं, मोरों ने अपनी झंकार से बाग़ों को सर पर उठा लिया है, ऐ श्याम अब तो तेरी ही कमी है।
आजा और बुझे हुए दिलों में आग लगा दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसंत के गीत

चलने लगा बिल्लूर का साग़र किनारे जू,
पत्थर में जान फूँक दी बादे बहार ने।[1]

उस वसंत ऋतु को आते देख कर, जिस के आगमन पर पत्थरों तक में भी जान आ जाती है, उर्दू का एक कवि अपने ग़म को भूल जाना चाहता है और निश्चित हो कर कहता है——

छलकता हुआ कैफ़[2] का जाम ले कर
नसीमे बहारी[3] का पैग़ाम ले कर
बसंत आ रहा है, बसंत आ रहा है !
जलाएगा अब क्या भला सोज़[4] हम को
भुलाएँगे रंजो मुहन[5] और ग़म को
बसंत आ रहा है, बसंत आ रहा है !

अपने गीत "पुरानी वसंत" में अब्बुल असर 'हफीज़' भी इसी भाव से प्रेरित होकर कहते हैं——

उम्र घट गई तो क्या ?
डोर कट गई तो क्या ?
यह हवाएं तुंदो तेज़
रुख पलट गई तो क्या ?
आ गई बसंत रुत[6]
और इक पतंग दे
रंग दे
रंग दे क़दीम रंग

---

[1] बिल्लूर (शीशे) का प्याला नदी के किनारे चलने लगा है——अर्थात् वसंत के समीरण से मतवाले होकर मयख्वार नदी के किनारे जाकर मदिरा पान कर रहे हैं और मदिरा का पात्र इस हाथ से उस हाथ में चलने लगा है——कवि कहता है कि वसंत की बयार में वह जादू है कि पत्थर अर्थात् जड़ पदार्थों में भी इस ने जान फूँक दी है।

[2] मस्ती। [3] वसंत का समीरण। [4] दर्द। जलन। [5] दुख। [6] ऋतु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पंडित इंद्रजीत शर्मा, जिन्हों ने उर्दू में अपनी पुस्तक "नैरंगे-फ़ितरत" लिखने के बाद इस रंग को भी अपने गीतों से काफ़ी समृद्ध बनाया है "वसंत" शीर्षक गीत में लिखते हैं—

आओ 'सखी' री चलें कुंज में छाई है हरियाली
फूलों की भरमार है ऐसी लदी है डाली-डाली
गेंदा और गुलाब खड़े हैं लिए हाथ में प्याली
आँख खोल कर ताक-झाँक में नरगिस है मतवाली
आओ 'सखी' री चलें कुंज में छाई है हरियाली

इसी उल्लास के रंग में एक और भी गीत है—

सजनि
आओ बसंत मनाएं
पीत के ही वे रंग जमाएं
सुंदर निर्मल
हो फुलवार
और जहां हो
फूलों की महकार
भँवरों की गुंजार
ऐसे में फिर
खुशी मनाएं
सजनि
आओ बसंत मनाएं

परंतु दुनिया में सुख ही सुख हो यह बात नहीं। सुख की छाया में दुख है, हर्ष के दामन में व्यथा है, उल्लास की गोदी में विषाद है। वसंत में सब ही उल्लास और हर्ष से विभोर हो उठते हों, इस दुखी संसार में यह कहां ? 'ग़ालिब' ही कहते हैं—

उग रहा है दरो दीवार से सब्ज़ा ग़ालिब।
हम बयाबां में हैं और घर में बहार आई है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव्बुल असर 'हफ़ीज़' भी जहां सरसों के फूलने का, सखियों के झूलने का, तरुणों के गीत गाने का, मनचलों के पतंग उड़ाने का ज़िक्र करते हैं, वहां वह उस युवती को भी नहीं भूलते, जिस ने वसंत के आने पर फूलों के पीले गहने तो पहन लिए हैं परंतु प्रियतम परदेश में है इस लिए––

है मगर उदास
नहीं पी के पास
ग़मो रंजो यास
दिल को पड़े हैं सहने

उसी विरहिन के हार्दिक मर्म को पंजाब के तरुण कवि, जनाबे 'क़ैस' जिन्हों ने उर्दू ग़ज़लों से काफ़ी अरसे तक पंजाब में सिक्का जमा कर इस रंग में लिखना आरंभ किया है, एक सरल गीत में व्यक्त करते हैं।

फूली फुलवारी-फुलवारी
फूल-फूल फूले लहराए
झूम-झूम कर भँवरा गाए
महकी क्यारी-क्यारी
फूली फुलवारी-फुलवारी
सखियां झूलें और झुलाएं
रल-मिल कर सब मंगल गाएं
मैं पापिन दुखियारी
फूली फुलवारी-फुलवारी

और फिर वसंत के दिनों में यौवन-मदमाती दुलहिन किस प्रकार सिहर कर मिन्नत से अपनी सखी से कहती है––

सजनि
लिख भेजो कोई पाती
आई बसंत पिया नहीं आए
किस बिध चैन दुखी मन पाए
आग बिरह की जिया जलाए
बात कही नहीं जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजनि

लिख भेजो कोई पाती

और ताना देते हुए लिखो, कि

वा रसिया भूले बिरहन को
खो बैठी मैं जीवन-धन को
चैन नहीं है पापी मन को
नाम जपूं दिन-राती

सजनि

लिख भेजो कोई पाती

लिखो कि

घर को आओ भिखारन के धन
सदक़े तुम पर जीवन यौवन
लौट आओ परदेसी साजन
फ़ितरत[1] है मदमाती

सजनि

लिख भेजो कोई पाती

और फिर वसंत के दिन मालिन को सरसों के फूल लाते देख कर विरहिन दुखित हो जाती है, और चिढ़ कर उस से कहती है—

ऐ मालिन इन फूलों को तू जा ले जा मेरे सामने से ;
यह लहू रुलाती है मुझको सूरत मतवाली सरसों की ।
यह ज़र्दी इन की लाली है, पीला पन है गहना इन का ;
मैं जन्म जली दुख की मारी लूं छीन न लाली सरसों की ।
जब आए बसंत मेरे मन का तो लाख बसंत मनाऊं मैं ;
सरसों के हार पिरोऊं मैं और गीत बसंत के गाऊं मैं ।

---

[1] प्रकृति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होली के गीत

होली और वसंत का चोली-दामन का-सा साथ है। एक की याद आते ही दूसरे का चित्र आँखों के सम्मुख खिच जाता है। उन दिनों की स्मृति भी जागृत हो उठती है जब वसंतोत्सव मनाए जाते थे, और होली खेली जाती थी। जब भारत खुशहाल था, संपन्न था और देश का कोना-कोना व्रज बन जाता था; नाचता, गाता और फाग मनाता था। फिर यह कैसे संभव था कि भगवान् कृष्ण और वसंत के गीत तो गाए जाते पर होली को विस्मृति के गर्त में फेंक दिया जता?

इस रंग में होली के गीत भी गाए गए हैं, और खूब गाए गए हैं, परंतु उन में उल्लास नहीं है, हर्ष नहीं है। जब व्रज वह व्रज नहीं रहा तो होली फिर वह होली कहां रहती? आज कल जो होली खेली जाती है वह होली कहां है, होली का स्वाँग मात्र है। 'वक़ार' साहिब ने इसी वर्तमान दशा का चित्र खींचा है। एक दुखिया अपनी सखी से कहती है—

होली खेलें किस के संग आली ?
व्रज में अब वह बात नहीं है कान्ह वाली घात नहीं है।
जीवन का वह रंग नहीं है प्रेम का पहला संग नहीं है॥
नगर-नगर से प्रीत उठी है डगर-डगर से रीत उठी है।
खेल कहां ? इस खेल में चूके सखियां भूकी बालक भूके॥
कौन से रंग में चोली रंगाऊँ कौन से मुंह से फाग उड़ाऊँ ?
बस में नहीं है मन साजन का राग रंग रूप है मन का॥
मुरली मूक टूटा मृदंग आली।
होली खेलें किस के संग आली ?

एक और कवि ने मज़दूर की होली लिखी है। भावों की तीव्रता देखिए—

कष्ट उठाए और दुख झेले
मैंने कितने पापड़ बेले
मेरे रक्त से होली खेले
सरमाया[1] चालाक

---

[1] पूंजीवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंगा रह कर सर्दी काटी
भूका रह कर ख़ाक भी चाटी
नीचे माटी ऊपर माटी
मेरी होली ख़ाक !

और अपनी दीन दशा से दुखी होकर अछूत पुकार उठा है—

होली आई कैसे खेलूं ?
मेरा रंग है फीका-फीका
कमबख़्ती बदहाली सी का
हाल बुरा है मेरे जी का
होली आई कैसे खेलूं ?
हिंदू कुछ बेरंग हैं मुझ से
आमादाये[१] जंग हैं मुझ से
मेरा भी दिल तंग[२] है मुझ से
होली आई कैसे खेलूं ?

लेकिन फिर भी होली के दिन रंग उड़ाया जाता है। स्वाँग ही सही पर व्यवहार निभाया जाता है। सखी उदास है, वह होली न खेले, अछूत और श्रमी दुखी हैं वे होली न खेलें, और कवि भी इन दुखियों के दुख से दुखी हो कर होली न खेले, परंतु दूसरे तो खेलेंगे। उस सूरत में शायर का कर्तव्य केवल नसीहत करना रह जाता है यदि होली खेलना ही है तो ऐसी होली खेल जिस से—

बिछड़े हैं जो वह मिल जाएं
मन की कलियां फिर खिल जाएं
बैरी देखें औ हिल जाएं
तेरे घर का मेल
ऐसी होली खेल

---

[१] लड़ने को तैयार। [२] मेरा दिल मुझ से ऊब गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकता के गीत

कृष्ण के संबंध में गीत लिखने के बाद मौलाना 'हफ़ीज' ने एक प्रीत का गीत लिखा, जिस में सांप्रदायिकता को मिटा कर एकता का राज्य स्थापित करने की अपील की। गीत लंबा है, यहां पूरा नहीं दिया जा सकता फिर भी एक दो बंद देखिए—

अपने मन में प्रीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
मन मंदिर में प्रीत बसा ले ओ मूरख ओ भोले-भाले
दिल की दुनिया कर ले रौशन अपने घर में जोत जगा ले
प्रीत है तेरी रीत पुरानी भूल गया ओ भारत वाले
भूल गया ओ भारत वाले
प्रीत है तेरी रीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
क्रोध कपट का उतरा डेरा छाया चारों कूंट अंधेरा
शैख़ बरहमन दोनों रहज़न एक से बढ़ कर एक लुटेरा
ज़ाहरदारों की संगत में कोई नहीं है संगी तेरा
कोई नहीं है संगी तेरा
मन है तेरा मीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
भारत माता है दुखियारी दुखियारे हैं सब नर-नारी
तू ही उठा ले सुंदर मुरली तू ही बन जा श्याम मुरारी
तू जागे तो दुनिया जागे जाग उठें सब प्रेम पुजारी
जाग उठें सब प्रेम पुजारी
गाएँ तेरे गीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब सांप्रदायिकता के लिए बदनाम है और पंजाब के मुसलमान सांप्रदायिकता के कट्टर अनुयायी कहे जाते हैं। उसी पंजाब के मुसलमान कवि के मुँह से सांप्रदायिकता के विरुद्ध ऐसी बात निकलना क्या गौरव का विषय नहीं है, और क्या यह नवयुग की प्रतिनिधि हिंदी भाषा के प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण नहीं है ?

दूसरा गीत मैं मौलवी मक़बूल हुसेन अहमदपुरी का देता हूं, जिस के एक-एक शब्द से एकता का भाव टपका पड़ता है। गीत का शीर्षक है—'प्रेमपुजारी'। प्रेम का अर्थ यहां एकता से है—

हम तो प्रेम-पुजारी
धर्म प्रेम का सब से अच्छा प्रेम की शोभा सारी
कोई माने या ना माने हम तो प्रेम-पुजारी
आशा है यह अपने मन की प्रेम कन्हैया आएं
साँस-माँस को अपना कर लें हिरदय में रम जाएं
बिपता कटे हमारी

हम तो प्रेम-पुजारी
गाएं भजन बंसी वाले के ख़्वाजा[1] की जय बोलें
बड़े पीर[2] की आसा ले कर मन की घुंडी खोलें
नाव चले मँझधारी

हम तो प्रेम-पुजारी
दास बनें कमली वाले के रामचंद्र के दरबारी
कहें मगन हों 'अहमदपुरी'[3] सब से हमारी यारी
सब से लाज हमारी
हम तो प्रेम-पुजारी

मौलाना 'वक़ार' ने भी वर्तमान फूट के विरुद्ध आवाज़ उठाई है और कहा है—

---

[1] ख़्वाजा मएँयन दीन चिश्ती।
[2] ख़्वाजा ग़ौस समदानी जिन को भारत में 'बड़ा पीर' भी कहा जाता है।
[3] मौलवी मक़बूल अहमदपुर के रहने वाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत में घर की फूट बुरी
फूट ने रघवर घर से निकाले पापन फूट बुरी
रावन से बलवान पिछाड़े जल गई लंकपुरी
जगत में घर की फूट बुरी
फूट पड़ी तो कर बल जाकर हुए हुसेन[1] शहीद[2]
मान हो जिन का सारे जग में मारे उन्हें यज़ीद[3]
जगत में घर की फूट बुरी
फूट ने अपना देश बिगाड़ा खो दी सब की लाज
बना हुआ है देश अखाड़ा फूट बुरी महराज
जगत में घर की फूट बुरी
तन से कपड़ा, पेट से रोटी फूट ने ली हथियाय
धन बल मान सभी कुछ अपना हम ने दिया गँवाय
जगत में घर की फूट बुरी

देश के गीत

पंजाबी भाषा में तो आप को सहस्रों देश के गीत मिलेंगे परंतु उर्दू में सब से पहले शायद महाकवि 'इक़बाल' ने ही देश का गीत लिखा। देश के बच्चे-बच्चे उसे लय से और तन्मयता से गाते हैं—

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा
हम बुलबुलें हैं उस की वह गुलस्तां[4] हमारा
ग़ुरबत[5] में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में
समझो हमें वहां ही दिल हो जहां हमारा
परबत वह सब से ऊँचा हमसाया[6] आसमां का
वह संतरी हमारा वह पासबां[7] हमारा

---

[1]हज़रत हुसेन। [2]बलिदानी। [3]हज़रत हुसेन का घातक। [4]बाग़ (उपवन)। [5]निर्वासन। [6]पड़ोसी,। [7]रक्षक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोदी में खेलती हैं जिस की हजारों नदियां
गुलशन[1] है जिन के दम से रश्के जना[2] हमारा
मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा

इसी दौर में उन्हों ने भारतीय बच्चों का राष्ट्रीय गीत 'मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है' और 'नया शिवाला' लिखे थे। वह तो अब यह मय पीना छोड़ चुके हैं परंतु प्याला आज भी दूसरों के हाथों में घूम रहा है। इसी देश की सुधा से मस्त हो कर 'कवि 'अखतर' शेरानी गाते हैं—

भारत, सब की आँख का तारा भारत
भारत है जन्नत का नजारा भारत
सब से अच्छा सब से न्यारा भारत
दुख-सुख में दुख-सुख का सहारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत
शाही शानो-शौकत वाली बस्ती
इज्जत वाली अजमत[3] वाली बस्ती
सदियों की जिंदा शोहरत[4] वाली बस्ती
तारीखों[5] की आँख का तारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत
कैसी भीनी-भीनी हवाएं इस की
कैसी नीली-नीली घटाएं इस की
कैसी उजली-उजली फ़िज़ाएं इस की
दुनिया में जन्नत का नजारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत

यह गीत गाने के लिए लिखा गया है। सब मिल कर एक साथ इस गीत को

---

[1]उपबन। [2]वह जिस पर स्वर्ग को भी ईर्ष्या हो।
[3]प्रतिष्ठा। [4]ख्याति। [5]इतिहासों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाते हैं। इस के बाद एक व्यक्ति यह पद गाता है 'प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत' और फिर सब मिल कर अन्य पद गाते हैं।

भारतवर्ष और महात्मा गांधी एक नाम हो कर रह गए हैं, जैसे गोकुल और कृष्ण, फिर यह कैसे संभव था कि देश के गीत गाए जाते और महात्मा गांधी का गीत न गाया जाता? इस नए युग में यह गीत भी गाया गया है और इस के गाने वाले हैं प्रसिद्ध मुसलमान राष्ट्रीय कवि 'साग़र' निज़ामी। "महात्मा गांधी" शीर्षक गीत में वह लिखते हैं—

कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा

दुनिया गो थी बैरी उस की दुश्मन था जग सारा
आख़िर में जब देखा साधू वह जीता जग हारा

कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा

सच्चाई के नूर[1] से इस के मन में है उजियारा
बातिन[2] में शक्ती ही शक्ती, ज़ाहर[3] में बेचारा

कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा

बूढ़ा है या नए जन्म में बंसी का मतवारा
मोहन नाम सही पर साधू रूप वही है हारा

कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा

---

[1]ज्योति। [2]अंदर से। [3]प्रकट रूप से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के आकाश पै है वह एक चमकता तारा
सच मुच ज्ञानी, सच मुच मोहन, सच मुच प्यारा-प्यारा
कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा

यह गीत 'कोरस' में गाने वाले हैं। इन की लय और तान भी वैसी ही है। इन को पढ़ते समय प्रतीत भी ऐसा ही होता है जैसे देश-प्रेमियों का जलूस स्वदेश प्रेम से विभोर हो कर यह गीत गाते-गाते जा रहा है।

वैसे तो देश और उस की विभिन्न समस्याओं के संबंध में इतने गीत लिखे गए हैं कि केवल देश के गीतों से ही एक पुस्तक बन सकती है परंतु मैं मौलवी महम्मद फ़ैज़ लुधियानवी मुंशी फाज़िल के गीत का एक बंद देना चाहता हूं। सोए हुए देश-वासियों को ग़फ़लत की नींद से जगाने के लिए ही यह गीत लिखा गया है—

आन पड़ी है मुश्किल भारी
लेकिन तुम पर नींद है तारी
जाग उठी है ख़लक़त सारी
सुन कर बेदारी का राग
ऐ हिंदी तू अब तो जाग

माया के गीत

अतीत काल से संतजन माया को कोसते आए हैं। कबीर ने लिखा है—

माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिए कर डोले, बोले मधुरी बानी।
केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।

माया के विषय में इस युग के प्रायः सभी कवियों ने गीत लिखे हैं। मैं यहां एक दो गीत दूँगा। माया के संबंध में अधिक लोकप्रिय होने वाला गीत जो बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं में उद्धृत होने के बाद जन-साधारण की ज़बान पर चढ़ गया है वह कवि मनोहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल राहत का गीत है। यह सब से पहले सुदर्शन जी की मासिक-पत्रिका 'चंदन' में निकला था। कवि लिखता है—

बाबा, सुन लो मेरा गीत

दुखिया मन है दुखिया काया
छूट गया है अपना पराया
दुनिया क्या है माया माया
माया के सब मीत हैं लेकिन
माया किस की मीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

माया वाले लोभ के बंदे
तन के उजले मन के गंदे
झूठी दुनिया झूठे धंदे
कोई नहीं है संगी-साथी
सब की झूठी प्रीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

माया ही से प्यार है सारा
झूठा सब संसार है सारा
खोटा कारोबार है सारा
रीत का कोई खरा नहीं है
सब की खोटी रीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

इसी सिलसिले में स्वर्गीय अब्दुल रहमान बिजनौरी का एक गीत 'जोगी की सदा' भी काफ़ी मर्मस्पर्शी है। मैं इस के दो बंद नीचे देता हूं।

यह निथरी-निथरी आँखें
यह लंबी-लंबी पलकें
यह तीखी-तीखी चितवन
यह सुंदर-सुंदर दर्शन
माया है सब माया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह गोरे-गोरे गाल
यह लंबे-लंबे बाल
यह प्यारी-प्यारी गरदन
यह उभरा-उभरा यौवन
माया है सब माया है

माया की मदिरा पी कर गहरी नींद में सोने वालों को जगाने के लिए श्री अमरचंद 'क़ैस' ने भी एक सुंदर गीत लिखा है —

उठ निद्रा से जाग ऐ प्यारे
उठ आलस को त्याग ऐ प्यारे
तेरे जागे जाग उठेंगे
तेरे सोए भाग ऐ प्यारे
इस धन से क्यों खेल रहा है
यह धन तो है नाग ऐ प्यारे
मन चंचल है, थामे रखना
चंचल मन की बाग ऐ प्यारे
आशा तृष्णा जाल सुनहरी
इन दोनों से भाग ऐ प्यारे
माया एक मनोहर छल है
इस माया को त्याग ऐ प्यारे

'वक़ार' साहिब का यह गीत भी काफ़ी शिक्षाप्रद है—

रंग रूप रस सब माया है
इस माया की चाल से बचना
इस माया के जाल से बचना
इस ने बहुतों का मन भरमाया है
रंग-रूप-रस सब माया है
राग की लहरें जाल की तारें
मन-पंछी उलझा कर मारें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन में फँस कर मन पछताया है
रंग-रूप-रस सब माया है

रंग है क्या ? इक नीझ[1] का धोका
रूप है क्या ? इक रीझ का धोका
रस क्या ? ढलती फिरती छाया है

पंडित इंद्रजीत शर्मा के एक-दो चौपदे भी देखिए—

माया आनी जानी है
माया बहता पानी है
माया रूप कहानी है
त्याग रे मूरख माया त्याग

माया को तू मीत न जान
इस बैरन की प्रीत न जान
सीधी इस की रीति न जान
त्याग रे मूरख माया त्याग

जान पाप का मूल इसे
जान दुखों का झूल[2] इसे
याद न कर अब भूल इसे
त्याग रे मूरख माया त्याग

संसार

कवियों ने संसार को कई पहलुओं से देखा है और ऐसा ज्ञात होता है कि उन के हाथ भ्रांति के सिवा कुछ नहीं आया। पंजाब के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि साईं बुल्हेशाह ने इसे भीतर से देखने का उपदेश दिया है और लिखा है—

---

[1] दृष्टि। यह शब्द पंजाबी भाषा से लिया गया है।
[2] चोला।

५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दुनिया बिच अंधेरा है
एह तिलक न बाज़ी वेहड़ा है
वड़ अंदर वेखो केहड़ा है
वाहू ख़फ़तन पई ढुढें दीऐ[1]

वह सूफ़ी थे, फ़कीर थे, कदाचित् उन्हों ने ऐसा किया हो, परंतु जन-साधारण तो ऐसा नहीं कर सकते और जन-साधारण के दुःखों से दुखी कवि इस के भीतरी रूप को देख कर कब शांत हो कर संतोष से बैठ सकते हैं? अबुल असर 'हफ़ीज़' संसार को दुखी देखते हैं और एक गीत में कहते हैं——

दुखिया सब संसार
प्यारे
दुखिया सब संसार
मोह का दरिया, लोभ की नैया, कामी खेवनहार
मौज के बल पर चल निकले थे, आन फँसे मँझधार
प्यारे
दुखिया सब संसार

और इन दुनिया वालों की दुनियादारी से भी कवि दुखी है——

तन के उजले, मन के मैले, धन की धुन असवार
ऊपर-ऊपर राह बतावें, भीतर से बटमार
प्यारे
दुखिया सब संसार

'अहसान' साहब ने भी 'संसार' पर एक गीत लिखा है और इसे सपना कहा है——

सीस नवा कर झरना रोए, छोड़ के उत्तम देस
उस की चिंता राम ही जाने, जिस का पी परदेश

---

[1] साईं बुल्हेशाह कहते हैं कि इस दुनिया में चहुँदिशि अंधेरा ही अंधेरा है, यह तो एक फिसलते आँगन की नाईं है। जो आता है फिसल जाता है। ऐ बावरी, तू इसे भीतर से देख। पागल, बाहर ही क्यों सर पटक रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावन औ फिर काली बदली बूंदनियों के तार
रीत जगत की प्रीत से ख़ाली सपना है संसार

इंद्रजीत शर्मा इसे 'झूठ' समझते हैं। समझते हैं संसार में सत्य कुछ नहीं, नित्य कुछ नहीं, सब झूठ है। इस लिए कहते हैं—

झूठी है यह दुनियादारी, झूठा है ब्यौहार
प्रेम है झूठा, प्रीत है झूठी, झूठा है सब प्यार
प्यारे झूठा सब संसार

रिश्ते नाते झूठ के बंधन, हैं जी का जंजाल
झूठ का चारों ओर जगत में फैल रहा है जाल
प्यारे झूठा सब संसार

झूठे ज्ञानी, झूठी बानी, झूठा दीन उपदेश
झूठी रीत जगत की बाबा, देश हो चाहे विदेश
प्यारे झूठा सब संसार

झूठी नैया, झूठा खेवट, झूठे हैं पतवार
भवसागर में आन फँसे हैं, कैसे हो उद्धार
प्यारे झूठा सब संसार

पंडित विहारीलाल 'साबिर' को जग में प्रेम ही प्रेम दिखाई देता है और वह लिखते हैं—

यह जग प्रेम पुजारी है बाबा
बिरहन का मन प्रेम का मंदिर
प्रियतम है इस प्रेम के अंदर
ईश्वर प्रेम, प्रेम है ईश्वर
इस की गत न्यारी है बाबा
यह जग प्रेम-पुजारी है बाबा

और इतनी भिन्न बातों को देख कर कोई क्या निर्णय कर सके। वास्तव में न संसार दुखी है, न सपना, न झूठ है, न प्रेम-पुजारी है, कुछ है तो अपने मन का फेर है। जैसा किसी का मन होता है वैसा ही उसे संसार लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन

जीवन माया है अथवा माया ही जीवन है, इस का कोई पता नहीं चलता। वास्तव में माया, संसार और जीवन तीनों ही रहस्य हैं। जहां कवि माया और संसार की गुत्थी को नहीं सुलझा सके, वहां जीवन की गुत्थी उन से क्या सुलझती ?

उर्दू के इस दौर में जीवन पर भी गीत लिखे गए हैं। मैं एक गीत देता हूं, जिस में जीवन, संसार और माया तीनों पर ही प्रकाश डाला गया है। कवि लिखता है—

जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
झूठा है संसार का सपना
झूठा झूठे प्यार का सपना
माया की यह ओट है प्यारे
माया की यह ओट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
जीवन का अभिमान भी झूठा
ख्याति और सम्मान भी झूठा
झूठी इस की चोट ऐ प्यारे
झूठी इस की पोट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
जन्म पै मूरख क्यों मुसकाए
मरन पै क्यों कोई नीर बहाए
काल के मन में खोट ऐ प्यारे
काल के मन में खोट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वक़ार' साहब ने लिखा है--

मोह चंचल की नदिया पर है माया-रूपी घाट
आशा नैया, काम खेवैया, लोभ हैं इस के पाट
जीवन है इक रैन अँधेरी साँस दुखों की बाट

सम्मुख कजली बन है भयानक, चिंता मन का रोग
टेढ़ा मारग, लगी हुई है बाघ के मुँह को चाट
जीवन है इक रैन अँधेरी साँस दुखों की बाट

माया, संसार और जीवन के गीतों के अतिरिक्त उर्दू में रहस्यवादी गीत भी कम नहीं लिखे गए हैं। फिर प्रेम, विरह और स्मृति के गीत हैं, और उन के बाद प्रकृति-संबंधी गीतों की तथा लोरियों की बानगी देखना भी आवश्यक है। इन के संबंध में आगामी अंक में निवेदन किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर जटमल नाहर और उन के ग्रंथ

[लेखक--श्रीयुत अगरचंद नाहटा और भँवरलाल नाहटा]

कविवर जटमल और उन की 'गोरा बादल की बात' साहित्य-संसार में पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुकी है। इस की प्रसिद्धि की कथा भी बड़ी मनोरंजक और आश्चर्यजनक है। साहित्य-महारथी बाबू श्यामसुंदरदास जी यदि सन् १९०१ की रिपोर्ट में इस 'वार्ता' को गद्य की रचना न बताते तो संभव है जटमल की इतनी ख्याति न फैलती, अर्थात् यों कहें कि एक साहित्यिक विद्वान की भूल ने इस की प्रसिद्धि में बड़ी भारी सहायता पहुँचाई। उस समय तक हिंदी का, विशेषतः खड़ी बोली का, उतना प्राचीन गद्य-ग्रंथ अन्य कोई उपलब्ध नहीं था, इस से तत्कालीन हिंदी गद्य के उदाहरण-स्वरूप सभी विद्वान अपने ग्रंथों में इस का उल्लेख करते गए। परंतु विशेष खोज द्वारा एशियाटिक सोसायटी की प्रति के मिलते पर भ्रम-निवारण के साथ ही गद्यानुवाद उन्नीसवीं शताब्दी का प्रमाणित हो गया।

'गोरा बादल की बात' के अतिरिक्त जटमल की अन्य कोई कृति प्रकाश में नहीं आई थी। अतः हमारी खोज-शोध से प्राप्त अन्य कृतियों के परिचय तथा कवि-परिचय, 'गोरा बादल की बात' के विशेष विवरण के साथ प्रस्तुत निबंध में प्रकाशित किए जाते हैं।

कविवर की कृतियों के साथ हमारे संबंध की कथा भी पठनीय एवं मनोरंजक होने से संक्षेप में यहां लिखी जाती है।

आज से लगभग ८ वर्ष पूर्व, जब हम ने साहित्य-संसार में प्रवेश कर हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह करना प्रारंभ किया था, तब जो ग्रंथ सर्व-प्रथम संग्रह हुए उन में नाहर जटमल कृत 'गोराबादल की बात' की एक प्राचीन प्रति (सं० १७५२ की) उपलब्ध हुई। तभी से जटमल के विषय में हमारा परिचय प्रारंभ हुआ। खोज-शोध का कार्य सतत चालू था, इसी बीच हमें बीकानेर के श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्रसूरि जी के संग्रह के अवलोकन का सुअवसर प्राप्त हुआ। उक्त संग्रह में गोराबादल की कथा के अतिरिक्त जटमल की अन्य कृतियों में 'प्रेमलता चौपाई' और 'बावनी' भी मिलीं। उसी वर्ष उपाध्याय श्री जयचंद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी के भंडार में 'लाहोर गजल' भी दृष्टिगोचर हुई। हम ने तत्काल उन प्रतियों से यथोचित उद्धरण ले लिए।

एक बार कलकत्ते में सुप्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी बाबू पूरणचंद्र जी नाहर से प्रसंगवश इस विषय में वार्त्तालाप हुआ। उन्हें अब तक जटमल के स्वगोत्रीय अर्थात् नाहर होने का ज्ञान न था, अतः उन्हें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई और जटमल एवं उन के ग्रंथों के विषय में विशेष जानने की उन्हों ने इच्छा प्रकट की। उत्तर में हम से जटमल के ३-४ ग्रंथों का पता पा कर उन की प्रतियां प्राप्त करने के लिए हमें एवं श्रीपूज्य जी और उपाध्याय जी को बराबर प्रेरित करते रहे।

नाहर जी की प्रेरणावश हम ने अपने संग्रह की 'गोराबादल की कथा' (सं० १७५२ लिखित) और उपाध्याय श्री जयचंद्र जी के भंडार से 'लाहौर गजल' की प्रति भी यथासमय भेज दी, परंतु श्रीपूज्य जी के भंडार की सूची न होने के कारण अवशेष ग्रंथों की प्रतियां कहां और किस बंडल में रक्खी हुई थीं, ज्ञात न होने से भिजवाने में असमर्थ रहे।

संवत् १९८९ में अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के सभापति हो कर श्री नाहर जी अजमेर पधारे। वार्त्तालाप के प्रसंग में महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशंकर जी ओझा ने बताया कि 'गोराबादल की बात' का संपादन ठाकुर रामसिंह जी तथा स्वामी नरोत्तमदास जी करने वाले हैं और उन्हें साहाय्य देने को कहा। श्रीयुक्त नाहर जी ने हमारे नाम-निर्देश के साथ, विशेष सहायता उन्हें वहीं मिल सकती है, यह सूचित किया।

ओझा जी की सूचनानुसार ठाकुर रामसिंह जी से इसी प्रसंग को ले कर हमारा परिचय हुआ। सं० १९९० के श्रावण में बीकानेर से ठाकुर रामसिंह जी और स्वामी नरोत्तमदास जी कलकत्ता पधारे। उन दोनों एवं बाबू पूरणचंद्र जी नाहर के साथ हम भी रिपोर्ट में उल्लिखित गोराबादल की गद्य 'वार्त्ता' के अवलोकनार्थ 'रायल एशियाटिक सोसायटी' में गए। उस प्रति की प्राप्ति बड़ी कठिनता से हुई जिस के समाचार यथा-समय श्री नाहर जी ने 'कुएं भांग'[1] नामक लेख द्वारा 'विशाल-भारत' (पौष १९९०) में और स्वामी जी ने

---

[1] इस लेख में मुद्रण-दोष से भँवरलाल नाहटा के स्थान पर भँवरलाल नाहर छप गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जटमल की गोराबादल री बात' नामक लेख द्वारा 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १४, अंक ४ में साहित्य-संसार में प्रकाशित कर दिए।

इधर श्रीपूज्य जी के संग्रह से उपरोक्त प्रतियों को खोज कर नाहर जी को भेजने के प्रसंग से उन के ज्ञान-भंडार के समस्त (२५००) हस्तलिखित ग्रंथों की विशेष विवरणात्मक सूची तैयार करते समय जटमल-कृत अन्य ग्रंथ-द्वय ('स्त्रीगजल' और 'फुटकर सवैया') भी नवीन उपलब्ध हुए जिन की प्रतियां नाहर जी को भेज दी गईं। उन्हों ने उन सब की नकलें करवा लीं क्योंकि उन का उक्त ग्रंथों का सुसंपादित संस्करण प्रकाशित करने का विचार था। हम भी जटमल के विषय में कई बार लिखने का विचार कर के इस लिए रह गए कि नाहर जी इस विषय में लिखेंगे ही। किंतु लिखते दुख होता है कि अकस्मात् उन का देहांत हो जाने से ऐसा न हो सका। अतएव हम ने प्रस्तुत निबंध द्वारा जटमल का, उन के ग्रंथों के साथ यथाज्ञात आवश्यक और उपयोगी परिचय लिखने का प्रयत्न किया है। जटमल की कृतियों की उपलब्धि और हमारे उन से संबंध की यह संक्षिप्त आत्म-कथा है।

'गोराबादल की बात' की प्रशस्ति में कविवर जटमल ने अपना परिचय "धरमसी कौ नंद नाहर जाति जटमल नांव" इन शब्दों में दिया है, जिस से उन का गोत्र नाहर और पिता का नाम धर्मसी होना स्पष्ट है।

जटमल के निवास-स्थान के संबंध में अद्यावधि कोई निश्चित प्रमाण साहित्य-संसार में ज्ञात न था अतः कल्पना के अतिरिक्त निश्चित स्थान बता देना कठिन बात थी। हमारा अनुमान, 'प्रेमलता चौपाई' मिलने से पूर्व ही 'लाहौर गजल' नामक कृति से उन का निवास-स्थान लाहोर होने का ही था। 'प्रेमलता चौपाई' ने उसे स्पष्ट प्रमाणित कर दिया, यद्यपि 'गोराबादल की बात' सिंबुला में और 'प्रेमलता चौपाई' जलालपुर में रची हुई हैं, फिर भी प्रेमलता चौपाई की प्रशस्ति में "तहां वसत जटमल लाहोरी" इन शब्दों से कवि ने अपना मूल निवासस्थान लाहोर होने का उल्लेख किया है। इस चौपाई से अन्य एक महत्वपूर्ण बात पर भी प्रकाश पड़ता है, वह यह कि पीछे से वे जलालपुर जा कर निवास करने लगे थे।

नाहर गोत्र ओसवाल जाति की एक शाखा है, अतः साधारणतया उन का जैन धर्मानुयायी होना प्रमाणित ही है, फिर भी हमारे संग्रह की सं० १७५२ में लिखित 'गोरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादल की बात' की पुष्पिका में 'श्रावक जटमल कृता' लिखा है इस से उन के जैन-धर्मानुयायी होने में कोई संदेह नहीं रह जाता। 'बावनी' के आदि की ५ गाथाओं का 'ऊँ नमो सिद्धं' से प्रारंभ भी इस की पुष्टि करता है।

१—गोरा बादल की बात[1] —यह वीररस-प्रधान काव्य है जो राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली में रचा गया है। भाषा और साहित्य की दृष्टि से यह हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। इस का प्रचार राजपूताने में सविशेष हुआ ज्ञात होता है। केवल बीकानेर में ही हम ने इस ग्रंथ की बीसों प्रतियां देखी हैं। इतना ही क्यों, हमारे संग्रह में भी इस की ७ प्रतियां विद्यमान हैं। लोकप्रिय होने से उन्नीसवीं शताब्दी में इस का गद्यानुवाद

---

[1]जटमल के इस 'बात' को रचने का क्या आधार था? यह विचार करने से ज्ञात होता है कि इस से पूर्व-रचित गोरा-बादल या पद्मिनी के संबंध में दो काव्य उपलब्ध हैं। प्रथम जायसी का 'पद्मावत' व द्वितीय हेमरत्न-कृत 'चौपाई'। परंतु जटमल की कथावस्तु इन दोनों से भिन्न अपनी मौलिकता प्रकट करती है। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १३, अंक ४ में जटमल-कृत 'वार्ता' का सार और 'पद्मावत' की कथा में जो अंतर है उस के विषय में श्री ओझा जी ने 'कवि जटमल रचित गोरा बादल की बात' नामक लेख लिखा है। हेमरत्न-कृत चौपाई की कथावस्तु उक्त पत्रिका के भाग १५, अंक २ में श्री माया-शंकर याज्ञिक के लेखानुसार ही है। उस लेख में लब्धोदय अपर नाम लालचंद-कृत (लेखक ने भ्रमवश कर्त्ता का नाम लक्षोदय और डुंगरसी का पुत्र लालचंद लिखा है पर वस्तुतः कवि खरतर गच्छीय वाचक ज्ञानराज का शिष्य लब्धोदय था, डुंगरसी के भ्राता भागचंद के आग्रह से कवि ने प्रस्तुत चरित्र रचा) रास से पद्मावत और जटमल-कृत 'वार्त्ता' में जो अंतर है उस का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। लब्धोदय ने यह रास हेमरत्न-कृत चौपाई के अनुसार ही रचा है।

हेमरत्न पूर्णिमा गच्छीय वाचक पद्मराज का शिष्य था। उस ने संवत् १६४५ श्रावण शुक्ला १५, सादड़ी में सुप्रसिद्ध मेवाड़ोद्धारक कावेड़िया भामाशाह के भ्राता ताराचंद के आग्रह से इस रास को गाथा ६१८ में रचा है, इस की तत्कालीन लिखित दो प्रतियां हमारे संग्रह में, और कतिपय वृहद् ज्ञानभंडार में भी हैं। लब्धोदय कृत रास की एक प्रति श्री जिनचारित्र सूरि भंडार और दो प्रतियां सेठिया लायब्रेरी में विद्यमान हैं।

जैन कवि की एक और रचना सं० १८३२ आषाढ़ शुक्ला २ जोधपुर में खरतर यति गिरधारी लाल-विरचित यहां के वृहत् ज्ञानभंडार में है।

लब्धोदय-कृत 'पद्मिनी चरित्र चौपाई' जिन भागचंद्र के अनुरोध से रची गई है, उन्हीं के कथन से कवि भुवनकीर्ति का 'अंजनासुंदरी रास' सं० १७०६ माघ शुक्ला ३ उदयपुर में रचित उपलब्ध है।

हमारे विचार से जटमल ने प्रस्तुत 'वार्त्ता' किसी के अनुकरण में न रच कर मौखिक सुनी हुई कथा के आधार पर ही रची होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हो चुका है जिस की प्रति कलकत्ते की 'रायल एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल' में है।

तीन वर्ष पूर्व श्रीयुत पंडित अयोध्याप्रसाद शर्मा 'विशारद' ने इस का संपादन कर 'तरुण-भारत-ग्रंथावली' कार्यालय, दारागंज, प्रयाग से प्रकाशित भी कर दिया है। परंतु वह संस्करण बिल्कुल सामान्य है, भूलों से भरा है, पाठ-शुद्धि भी जैसी चाहिए नहीं की गई है और न पाठांतर ही ठीक तरह से दिए गए हैं।

एक अक्षम्य भूल उन्हों ने 'कविपरिचय' में यह की है कि प्रशस्ति में 'नाहर जाति' या 'नाहर खांप' को 'नाहर खान' पढ़ कर "यह या तो मुसलमान हो गया था या नाहर खाँ की इस को उपाधि प्राप्त थी (क्योंकि उस ने स्वयं अपना नाम नाहर खाँ जटमल बताया है") इन शब्दों में कवि के मुसलमान होने तक की असंभव और विचारहीन कल्पना कर दी है।

इस ग्रंथ की अनेक प्रतियां देखने से इस की गाथाओं की संख्या का न्यूनाधिक पाठभेद एवं रचनाकाल के विषय में तीन मत पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ हम कतिपय प्रतियों के उद्धरण भी देते हैं।

१—सं० १७५२ फा० शु० ९ लि०	गा० १४४	रचना-काल सं० १६८६ भा० ११
२—सं० १७६३	गा० १५० (?)	रचनाकाल सं० १६८५ फा० शु० १५
३—सं० १७६७		
४—सं० १७६९	गा० १३१	रचना-समय का उल्लेख नहीं।
५—सं० १७७५ वै० शु० ५	गा० १२५	,, ,, ,,
६—सं० १७७९ आ० व० ८	गा० १४८	रचनाकाल सं० १६८० फा० शु० १५
७—सं० १७८०		रचना-समय का उल्लेख नहीं
८—सं० १८२०		रचनाकाल सं० १६८०
९—सं० १८३६ द्वि० श्रा० व० ५	गा० १२८	रचनाकाल का उल्लेख नहीं
१०—सं० १८४५		,, ,, ,,
११—सं० १८४८	गा० १२५	,, ,, ,,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—सं० १८५१ श्रा० व० १४	गा० १५७	सं० १६८५ फा० सु० १५
१३—सं० १८५७ वै० व० १३	गा० १५३	सं० १६९५ ,, ,,
१४—सं० १८८३ जे० सु० ३	गा० १४७	सं० १६८० ,, ,,
१५—सं० १८९७ से पूर्व	गा० १६०	सं० १६८६ माघ ११
१६—सं० १९११	गा० १६६	सं० १६८६ माघ ११

उपर्युक्त प्रतियों में नं० १, ५, ६, १४, १५ हमारे संग्रह में; नं० २, ८, १० शर्मा जी संपादित आवृत्ति के उल्लेखानुसार बीकानेर स्टेट लायब्रेरी में; नं० ९, ११, १२, १३ श्रीपूज्य जी के संग्रह में; नं० १६ श्री जिन कृपाचंद्र सूरि ज्ञानभंडार में; नं० ३ वृहद् ज्ञान-भंडार में; नं० ७ बाबू पूरणचंद्र जी नाहर के संग्रह में; और नं० ४ स्वामी नरोत्तमदास जी के पास हैं। इन के अतिरिक्त लेखन-समय के उल्लेख से रहित प्रतियां हमारे संग्रह में एवं अन्य ज्ञानभंडारों में बहुत सी उपलब्ध हैं।

पाठभेद

आदि—सं० १७५२ लिखित में—

चरण कमल चितु लाय, समरूं श्री श्री शारदा।
सुहमति दे मुझ माय, करूं कथा तुहि ध्याइ कइ ॥१॥
जम्बू दीप मझार, भरत खंड सभ खंड सिर।
नगर तिहां इकु सार, गढ़ चितौड़ है विषम अति ॥२॥
रतन सेन तिहाँ राय, पाय कमल सेवै सुभट।
सूरवीर सुखदाय, राजपूत रज कौ धणी ॥३॥
चतुर पुरुष चहुआण दान मान दोनूं दियइ।
मंगत जन को प्राण, आवइ मंगत दूर तंइ ॥४॥

सं० १७७५ लिखित में—

चरण कमल चित लाइ कइ समरूं श्री श्री शारदा।
मुझ अक्षर दे मांइ, कहिस कथा चित लाइ कइ ॥

सं० १७८० लिखित में—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सु (ख संपति) दायक सकल, सिद्धि बुद्धि सहित गणेश।
विघन विडारण विनयसौं पहिलौ तुझ पणमेश॥

सं० १७७९ लिखित प्रति में गाथा ८ के पश्चात् कथाप्रारंभ है। गाथा भेद सविशेष है।

सं० १८९७ से पूर्व लिखित––

चरण कमल चित लाइ कै, समरूं सारिद माय।
रतनसेन अरु पदमनी, कहिसुं कथा बनाय॥१॥
भरत क्षेत्र सोहत अधिक, जम्बूदीप मझार।
देश भलो मेवाड़ तहां, सब जन कुं सुखकार॥२॥
नगर भलौ चित्तौड़ है, तापर दूठ दुरंग।
रतनसेन राणउ निपुण, अमली माण अभंग॥३॥

······इत्यादि ६ गाथा के पश्चात् कथा-प्रारंभ।

अंत––सं० १७५२ लिखित––

युं अम्बर वाणी सुणी, प्रिय की पघड़ी साथ।
सती भई आणन्द सुं, सुर पुर दीने हाथ॥३९॥
सूरा सोय सराहियइ, घाउ सनमुख पाय।
सूरा सुर पुर संचरइ, कायर दुर्गति जाय॥४०॥
गोरा बादल की कथा, सूरां अधिक सुहाय।
सुणतां जागइ सूरिमा, आणंद अंग न माय॥४१॥

सालूरछंद––गोरइ जुबादल की कथा, अब भई सम्पूरन जान॥श्री॥

संवत सोलइ सय छयासी, भला भाद्रव मास।
एकादशी तिथि बार के, दिन करि धरी उल्लास॥
अब बसइ मोछ अडोल अविचल सुखी रइयत लोक।
आणंद घरि घरि होत मंगल देखियइ नहीं शोक॥
राजा तिहां अली खान न्याजी खान नासिर नंद।
सिरदार सकल पठाण भीतर जिउ नक्षत्र महिचंद॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिहां धरमसी कौ नंद नाहर जाति जटमल नांउ।
तिण करी कथा बणाय के बिचि सुंबला के गांउ ।।४२।।

दोहा--जटमल कीनी जुगत सुं, हरखि हियइ उपजाय।
श्रोता सुनहु जु कान दे, चतुर पढ़उ चितलाय ।।४३।।

पढतां नव निधि पाइयइ, सुनतां सब सुख होय।
जटमल जंपति गुन जनो, विघन न उपजइ कोय ।।४४।।

इति जटमल श्रावक कृता गोरइ बादल की कथा संपूर्ण ।। संबत् १७५२ वर्षे फागुण सुदि ९ दिने सोमवारे। पं० खेता लिखितं ।। कोटा मध्ये लिखितं ।।श्री श्री श्री।।

संवत् १७७५ लिखित--

नारी इम बाणी सुणी पिय की पगड़ी साथ।
सती भई आणंद सौ, शिवपुर दीनौ हाथ ।।२३।।

गोरइ बादल की कथा, संपूरण भई जाम।
गुरु सरसति प्रसाद करि कविजन करि मन ठाम ।।२४।।

... ...

कहता तिहां आणंद उपजइ, सुण्यां सुभ सुख होय।
जटमल पयंपै गुन जनो विघन न लागै कोय ।।१२५।।

संवत १७७५ वैशाख सु० ५ लि० पं० सुखहेम लूणसर मध्ये ।।

निष्कर्ष और विशेष ज्ञातव्य

१--गाथा-संख्या कम से कम १२५ मध्यम १५० और सर्वाधिक १६६ तक पाई जाती है। गाथाओं की कमी-बेशी के संबंध में भिन्न-भिन्न प्रतियों को मिलाने पर ज्ञात हुआ कि कथा-प्रारंभ से पूर्व सं० १७५२ लिखित प्रति में जो ४ सोरठे हैं वे ही मूल ग्रंथकार द्वारा रचे हुए हैं, अवशेष दोहों वाला मंगलाचरण, जो कि सं० १७८० लिखित नाहर जी वाली प्रति के मंगलाचरण (प्रथम गाथा) रूप में है वह सं० १६४५ रचित हेमरत्न-कृत 'गोरा बादल चौपाई' का है। कथा-प्रारंभ के पूर्व सं० १७७९ लिखित प्रति में ८ गाथाएं और सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८६७ से पूर्व लिखित प्रति में ६ गाथाएं हैं, जो जटमल की रचित न हो कर[1] किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होती हैं। शर्मा जी द्वारा संपादित आवृत्ति में कथा-प्रारंभ में ८ गाथाएं हैं, उन में की सं० १७७६ लिखित प्रति से गाथाएं ४ से ८ मिलती हैं। तृतीय गाथा सं० १८६७ पूर्व लिखित प्रति से मिलती है। संभव है संपादक ने उपलब्ध ५ प्रतियों का पाठ वर्गीकरण न कर के मिश्रित संस्करण प्रकाशित किया हो।

हेमरत्न-कृत चौपाई के अवलोकन से यह भी ज्ञात हुआ कि शर्मा जी वाले संस्करण में गाथांक ४२, ४३, ४४, ४६, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ६५ में जो छप्पय एवं श्लोक छपे हैं वे हेमरत्न-कृत चौपाई में गाथांक ६४, ६६, ६५, ६७, ७३, ६९, ७१, ६८, ७४, ७२, ६१, अनुक्रम से पाए जाते हैं। इस से प्रमाणित है कि लिपि-लेखकों ने उन्हें जटमल कृत 'गोराबादल की बात' में प्रक्षिप्त कर दिया है। हमारे ध्यान से जटमल-रचित मूल गाथाएं १२५ के लगभग होंगी।

२—पाठांतर-भेद के उदाहरण ऊपर केवल दो तीन प्रतियों के आदि-अंत से ही दिए गए हैं। भिन्न-भिन्न प्रतियों में अनेकानेक पाठांतर देखने में आए हैं, यदि सारे ग्रंथ के पाठांतर लिखे जांय तो सैकड़ों की संख्या में पहुंचें। जहां तक इस के रचना-काल की समकालीन प्रति न मिले, मूल पाठ को निर्धारित करना कठिन है।

३—रचनाकाल के संबंध में ऊपर दी हुई तालिका से स्पष्ट है कि कई प्रतियों में तो रचना-संवत् का दोहा ही नहीं मिलता, एवं जिन में मिलता है, उन में भी (१) सं० १६८६ भा० ११, (२) सं० १६८० फा० सु० १५, (३) सं० १६८५ फा० शु० १५, (४) सं० १६८६ माघ ११, (५) सं० १६९५ माघ ११, पांच मत पाए जाते हैं। अतः निश्चित नहीं कहा जा सकता कि कवि ने कृति में रचना-काल क्या दिया है, जब तक कोई समकालीन प्रति न मिले।

४—'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १३, अंक ४ में श्रद्धेय ओझा जी ने प्रस्तुत कथा का सारांश प्रकाशित किया है। उस में आप ने 'उस समय तक मनसबदारी[2] की प्रथा भी जारी नहीं हुई थी' लिख कर आपत्ति दर्शाई है, परंतु वह पाठ इस 'वार्ता' की सभी

---

[1] जटमल ने कथा-प्रारंभ में सोरठे रचे हैं, दोहे नहीं।
[2] वार्ता के "कहै फेर सुलतान करूं तुझ सात हजारी" के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतियों में नहीं मिलता, किंतु इस के बदले में 'गढ़ न लेहुं न लड़ूं, अरज इक सुनौ हमारी' पाठ पाया जाता है। संभव है कि लिपि-लेखक ने अपने समय के अनुकूल परिवर्तन कर दिया हो।

५—लेखन-संवत् के उल्लेख वाली प्रतियों में हमारे संग्रह की सं० १७५२ लिखित प्रति सब से प्राचीन है एवं सब से कम गाथा की प्रतियों में भी हमारे ही संग्रह की प्रति प्राचीन है।

ठाकुर रामसिंह जी और स्वामी नरोत्तमदास जी इस का सुसंपादित संस्करण प्रकाशित करन वाले हैं, अतः यहां विशेष विचार नहीं किया जाता।

२—प्रेमविलास प्रेमलता की कथा—यह काव्य 'गोराबादल की बात' से भी बड़ा है। जिस प्रकार प्रथम काव्य वीररस-प्रधान है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य शृंगार-रस-प्रधान है। प्रसंगवश अन्य सभी रसों का वर्णन होने से इस का नाम "सबरसलता" भी रक्खा गया है, जिस से कवि का सब रसों पर समान अधिकार ज्ञात होता है। इस काव्य की अद्यावधि तीन प्रतियां उपलब्ध हैं, जिन में एक तो श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्रसूरि जी के संग्रह में और दूसरी हमारे संग्रह में है। तीसरी प्रति हाल में जयपूर में श्रीपूज्य जी श्रीधरणींद्र सूरि जी के भंडार से प्राप्त हुई है। प्रथम प्रति सं० १८०९ में लिखी हुई है, जिस में २८६ गाथाएं हैं, दूसरी प्रति में यद्यपि लेखन-समय नहीं लिखा है तथापि काग़ज़ और लिपि देखते उस से प्राचीन ही ज्ञात होती है। उस में गाथाओं की संख्या, अंतिम दोहा न होने के कारण, २८५ है। रचना-काल और स्थान दोनों में सं० १६९३, भाद्रव शुक्ला ४-५ रविवार, जलालपुर में सहबाज खाँ के राज्यकाल में, लिखा है। तीसरी प्रति सिंध के भेहरा स्थान में लिखी गई है जहां प्राचीन नगर वीतभयपत्तन था। इस की पुष्पिका से जटमल के जैन होने की पुष्टि 'श्रावक' शब्द द्वारा होती है। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति प्रेमविलास प्रेमलता की सरबरलता नाम कथा नाहर गोत्र श्रावक जटमल कृता समाप्ता ॥ संवत् १७५३ वर्षे ज्येष्ठ वदि ७ दिने पंडित दानचंद्र लिपि कृतं भयहरा मध्ये ॥"

कथा-वस्तु मनोरंजक होने से यहां दी जाती है।

पोतनपुर नगर में प्रेमविजय राजा राज्य करता था, जिस की रानी प्रेमवती की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुक्षि से उत्पन्न राजकुमारी प्रेमलता सौंदर्य में अप्सराओं से भी बढ़ कर थी। राजा के मंत्री मदनविलास के प्रेमविलास नामक रूपवान् पुत्र था। राजकुमारी और मंत्रिपुत्र दोनों एक गुरु के पास विद्याध्ययन करने लगे। दोनों में परस्पर प्रेम न हो जाय इस लिए गुरु, राजकुमारी को परदे की ओट में बैठा कर पढ़ाया करता था। दोनों में मिथ्या विश्वास जमा दिया कि राजकुमारी जन्मांध और मंत्रिपुत्र कुष्टि है। एक बार गुरु की अनुपस्थिति में कुमारी के काव्य की मात्रा भूलने पर प्रेमविलास ने उसे अंधी शब्द से संबोधित किया उत्तर में कुमारी ने उसे कुष्टी कहा। इस तरह भेद खुलने पर दोनों का साक्षात्कार होने से प्रेमसागर उमड़ पड़ा। उन्हों ने यह प्रतिज्ञा भी कर ली कि दोनों को परस्पर विवाह करना है। अकस्मात् गुरु आ गए, यह वृत्तांत देख कर गुरु ने वहुत समझाया, पर उन दोनों ने अपना निश्चय प्रकट कर दिया। इस के पश्चात् कुमार और कुमारी एक दूसरे को देखे बिना बेचैन रहने लगे इसी समय कोई तंत्र, मंत्र और संगीतकला में प्रवीण सुंदर योगिनी वहां आई। राजा ने प्रेमलता को अभ्यास कराने के लिए योगिनी से निवेदन किया, वह हरदम के लिए राजमहल में रहना अस्वीकार कर ४ घड़ी आ कर पढ़ाने लगी। मंत्रिपुत्र भी उस के मठ में आता था। उन दोनों की हार्दिक व्यथा ज्ञात कर योगिनी ने दया करके उन्हें (१) आकाशगामिनी, (२) रूपपरावर्त्तनी, (३) अदृश्यांजन विद्यात्रय प्रदान कीं।

अमावस्या की रात को सखी चंपकमाला के साथ राजकुमारी प्रेमलता महल से निकल कर महाकाल देवी के मंदिर में आई, जहां प्रेमविलास भी पूर्व संकेतानुसार उपस्थित था। सखी ने मधुरध्वनि से गीत गाते हुए उन दोनों का विवाह कर दिया। महाकाल ने प्रकट हो कर आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी जोड़ी अविचल रहेगी और तुम्हें राज्य मिलेगा।

वहां से वे तीनों आकाश-मार्ग से उड़ कर रतनपुर नामक नगर के उद्यान में जा पहुँचे। वह नगरी नृप-विहीन थी अतः राजा नियुक्त करने के लिए निकाला हुआ दिव्य हाथी प्रातः काल ही लोगों के साथ आ पहुँचा। उस ने प्रेमविलास को राज्याभिषिक्त कर अपनी सूंड से तीनों को अपनी पीठ पर बिठा लिया। मंत्री, सामंत और नागरिक लोगों ने महदाडंबर से राज्याभिषेक किया।

सारा राज्यभार मंत्री को सौंप कर राजा प्रेमलता के साथ इतना आसक्त रहने लगा कि घड़ी भर भी उस के बिना कल नहीं पड़ती थी, यही हाल रानी का था।

एक बार चंद्रपुरपत्तन के राजा चंद्रचूड़ के बागी होने का हाल मंत्री से ज्ञात कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तृत सेना के साथ चढ़ाई की। दोनों में घमासान युद्ध हुआ फलतः प्रेमविलास की विजय हुई। नगर में आडंबर से प्रवेश कर कुछ दिन वहां रहने के पश्चात् राज्य अमरदत्त मंत्री को सौंप कर स्वयं रतनपुर आया। नगर-लोक और रानी अत्यधिक प्रसन्न हुईं, कवि ने राजा-रानी के विरह और युद्ध का अच्छा वर्णन किया है।

इधर पोतनपुर से चले जाने पर माता-पिता ने चिंतित होकर खोज के लिए आदमी दौड़ाए, महाकाल के मंदिर तक पद चिह्न पाकर राजा ने उपवास-सहित देवी के समक्ष ध्यान लगा दिया। रात्रि में देवी ने प्रसन्न हो कर प्रेमविलास और प्रेमलता के विवाह और अपने आशीर्वाद व राज्य-प्राप्ति की भविष्यवाणी कह कर संतुष्ट किया।

पाँच वर्ष बाद रतनपुर के एक व्यापारी से पता पा कर राजा ने उन्हें बुलाया। प्रेमविलास अपनी प्रिया के साथ ससैन्य पोतनपुर आया, राजा ने खूब स्वागत कर अपनी पुत्री परणाई, और उन्हें दहेज के साथ विदा किया। रतनपुर का सुखपूर्वक राज्य करते हुए प्रेमलता के प्रेमसिंह नामक सुंदर पुत्र जन्मा, योग्यवय में उसे एक सौ रानियां परणा कर राज्यभार सुपुर्द किया। वे दोनों ईश्वर के भजन में लीन रहने लगे। इस प्रकार राजा-रानी दोनों ने अपना अखंड प्रेम निभाया।

३—बावनी[1]—जैसा कि नाम से ज्ञात होता है वर्णमाला के बावन वर्णों को ले कर

---

[1] जैन साहित्य में इस के अतिरिक्त और भी बहुत सी बावनियां मिलती हैं। पाठकों की जानकारी के लिए उन की यहां संक्षिप्त सूची दी जाती है।

१. आध्यात्म-बावनी	कान्हसुत हीरानंद	गा० ५७	रचनाकाल सं० १६६८ पूर्व
२. दुर्जनशाल-बावनी	भोजक कृष्णदास	गा० ५६	सं० १६५१ वैशाख लाहोर
३. सार-बावनी	श्री सार	गा० ५६	सं० १६८६ आसोज सु० १०
४. उपदेश (किसन) बावनी	कृष्णदास लौंका	गा० ६१	सं० १७६८ आ० सु० १०
५. आध्यात्म (प्रबोध) बावनी	जिनरंग सूरि		सं० १७३१ मि० शु० २ गु०
६. केशव-बावनी	खरतर केशवदास	गा० ६०	सं० १७३६ श्रा० कृ० ५ सं०
७. जसराज (मातृका) बावनी	जिनहर्ष	गा० ५७	सं० १७३८ फा० कृ० ७ गु०
८. संवेगरसायन-बावनी	कान्तिविजय	गा० ५३	सं० १७४०
९. खेतल-बावनी	खेतल कृत	गा० ६५	सं० १७४३ मि० शु० १५ शुक्र.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस की रचना की गई है। छंदों के आरंभ में वर्णमाला के वर्ण क्रमशः आए हैं। प्रथम ५ छंदों के आरंभ में 'ॐ न मा स ध' ये वर्ण हैं जो 'ॐ नमो सिद्धं' के सूचक हैं। इस की भाषा खड़ी बोली है पर पंजाबी, राजस्थानी और ब्रज का काफ़ी मिश्रण है। इस की छंद-संख्या ५४ है। इस में पवित्र जीवन, संतोष, संसार की अस्थिरता आदि नीति और वैराग्य विषयों के

---

१०. धर्म-बावनी	धर्मसिंह		सं० १७२५ का० कृ० ९ रिणी
११. सुमति-बावनी	सुमतिरंग		
१२. हेमराज-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ	गा० ५७	
१३. केशरी गुरु-बावनी	पासचंदसूरि	गा० ५२	
१४. दोहा-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ		
१५. कवित्त-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ		
१६. मान-बावनी	मान	गा० ५७	
१७. क्षेम-बावनी	क्षेम हर्ष		
१८. मोहन-बावनी	मोहन श्रीमाल		
१९. सवैया-बावनी	विनय प्रमोद शिष्य बालचंद	गा० ५६	
२०. नेतृसिंह-बावनी	नेतृसिंह		
२१. निहाल-बावनी	ज्ञानसार		
२२. कुंडलिया-बावनी	धर्मसिंह		सं० १७३४ भा० २ जोधपुर
२३. छप्पय-बावनी	धर्मसिंह		सं० १७५३ श्रा० सु० १३ बीकानेर
२४. वैराग्य-बावनी	हीरनन्दन	गा० ५३	सं० १६९५ भा० शु० १५
२५. सागर-बावनी	सिंहविजय		सं० १६७४
२६. जैनसार-बावनी	रघुपत्ति	गा० ६२	सं० १८०२ भा० शु० १५ नापासर
२७. प्रस्ताविक छप्पय-बावनी	रघुपत्ति	गा० ५८	सं० १८२५ ऋषिपंचमी तोलियासर
२८. कुंडलिया-बावनी	रघुपत्ति	गा० ५७	सं० १८४८
२९. सवैया-बावनी	रघुपत्ति	गा० ५७	
३०. ब्रह्म-बावनी	निहालचंद		
३१. डुंगर-बावनी	पद्मकृत	गा० ५३	सं० १५४३ माघ शु० १२
३२. भामा-बावनी	विदुर कवि	गा० ५३	सं० १६४६ आ० शु० १०
३३. उदयराज-बावनी	उदयराज		सं० १६७६
३४. सवैया-बावनी	चिदानन्द	गा० ५२	
३५. आध्यात्म-बावनी	चिदानंद	गा० ५२	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेशात्मक कथन हैं। पंजाबी भाषा की प्रधानता देखते कवि के पंजाब-निवासी होने में कोई संदेह नहीं रह जाता। कवि की अन्य सब रचनाओं से यह अपनी निराली ही विशेषता रखती है। इस की केवल एक ही प्रति संवत् १७३३ सक्की ग्राम में लिखित श्रीपूज्य जी के संग्रह में उपलब्ध है। प्रत्येक छंद में कवि ने अपना नाम निर्देश किया है।

४--लाहौर गजल[1]--यह कविता खड़ी बोली में लाहौर के वर्णन रूप में लिखी हुई है। इस की ५-७ प्रतियां हमारे अवलोकन में आई हैं, जिन में तीन हमारे संग्रह में; एक श्री जिनकृपाचंद्रसूरि ज्ञानभंडार में; एक श्री जयचंद्र जी के भंडार में एवं अन्य फुटकर संग्रहों में भी हैं। हमारे संग्रह की प्रतियों में गाथा के अंक ५८ और ६० और एवं श्री जयचंद्र जी की प्रति में ५९ हैं। अन्य कई प्रतियों में गाथाओं के अंक लिखे नहीं रहने से गाथाओं की हीनाधिक संख्या नहीं लिखी गई। इस में लाहौर के जैन-मंदिर धर्मशाला के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक स्थानों का ज़िक्र आया है।

५---स्त्री गजल---इस में लाहौर गजल की भाँति खड़ी बोली में स्त्रियों के शृंगार

---

[1]इस 'गजल' के छंद और शैली के अनुकरण में जैन कवियों ने और भी अनेक नगरों की गजलें निर्माण की हैं, जिन में से निम्नोक्त गजलें हमारे संग्रह में हैं--

१. वीकानेर-गजल	यति उदयचंद्र		सं० १७६५ चैत्र
२. उदयपुर-गजल	खेतल कवि	गा० ८०	सं० १७५७ मार्गशीर्ष,
३. चित्तौड़-गजल	खेतल कवि	गा० ६२	सं० १७४८ श्रावण
४. मरोट-गजल	दुर्गदास		सं० १७६६ पूर्व
५. पाटण-गजल	देवहर्षकृत		सं० १८७२ पूर्व
६. दीसा-गजल	देवहर्ष कृत		सं० १८७२ पूर्व
७. बड़ौदा-गजल	दीपविजय कृत		सं० १८५२ मिगसर कृष्ण १
८. आगरा-गजल	लक्ष्मी चंद्र कृत	गा० ९४	सं० १७८० आ० शु० १३
९. बंगाल देश-गजल	निहालचंद	गा० ६५	
१०. बीकानेर हनुमान-गजल	यति जयचंद		सं० १८७२

इन के अतिरिक्त दीपविजय-कृत (नं० ११) 'सूरत गजल' ('जैनयुग' में प्रकाशित) (१२) 'खंभात गजल,' (१३) 'जंबूसर गज़ल,' (१४) 'उदयपुर गजल' (१५) 'चित्तौड़ गजल' आदि सं० १८७७ में रचित उपलब्ध हैं। नगर वर्णनात्मक काव्यों में श्रीमद् ज्ञानसार जी कृत 'पूरबदेश वर्णन छंद' एवं 'सिलहट लावणी', 'कलकत्ता गजल,' 'बंबई गजल' 'स्थली वर्णन', 'गुजरात वर्णन', इत्यादि उपलब्ध है। श्री नाहर जी के संग्रह के सचित्र विज्ञप्ति-पत्रों में भी कई गजलें देखी गई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं अंग-प्रत्यंगों का वर्णन है। इस की चार प्रतियां उपलब्ध हैं जिन में दो हमारे संग्रह में, एक श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्र सूरि जी के भंडार में और एक बाबू पूरणचंद्र जी नाहर के संग्रह में है। इन में १ प्रति सं० १७७५ लिखित और दूसरी सं० १७६५ में लिखी हुई है। अवशेष दोनों में प्रतियों का लेखन-समय नहीं दिया है परंतु वे भी अठारहवीं शताब्दी की ही ज्ञात होती हैं। एक प्रति में इस का नाम 'सुंदरी गजल' भी लिखा है। गाथांक प्रतियों में नहीं लिखे हैं पर लगभग २५ हैं एवं भिन्न-भिन्न प्रतियों में हीनाधिक्य भी है।

६—फुटकर कविताएं—संवत् १७६५ लिखित प्रति में जटमल कृत २८ छंद मिले हैं। जिन में ४ दोहे, ३ छप्पय और २१ सवैये हैं। कवि का भाषा-सौंदर्य, पद-लालित्य और कवित्व-शक्ति का इन में भी अच्छा परिचय मिलता है।

इन के अतिरिक्त कवि की दूसरी दो कविताएं (एक 'स्त्री गजल' की प्रति में, दूसरी 'प्रेमलता चौपाई' के अंत में) मिली हैं। विशेष खोज-शोध करने से आशा है कि कवि की और भी कई नवीन कृतियां प्राप्त हों।

उपसंहार

खड़ी बोली के कवियों में जटमल का स्थान महत्त्वपूर्ण है। हम यथोपलब्ध नवीन काव्यों का इस लेख में वर्णन कर चुके हैं पर हमारे ख़याल से कवि के अन्य काव्य भी उपलब्ध होने की संभावना है। जो काव्य मिले हैं वे सभी खरतर गच्छ के यतियों के प्रयास से मिले हैं। बीकानेर खरतर गच्छ का प्रमुख स्थान है। यहां के गद्दीधर श्रीपूज्यों के आज्ञानुवर्त्ती अनेक यति सर्वत्र परिभ्रमण कर धर्मप्रचार करते थे। 'प्रेमलता चौपाई', 'बावनी' एवं अन्य कुछ प्रतियां तो सिंध प्रांत में ही लिखी हुई हैं।

कवि पंजाब का निवासी था, अतः वहां के ज्ञानभंडारों की पूरी खोज होने पर कवि के समय की लिखी हुई प्रतियां एवं उन के काव्य भी मिलने की विशेष आशा है। अद्यावधि कवि की जो कृतियां उपलब्ध हुई हैं वे रचना-काल से लगभग ५०-६० वर्ष पश्चात् लिखित प्रतियां (प्राचीन से प्राचीन) हैं। समकालीन प्रतियों के उपलब्ध होने से मूल पाठ सुनिश्चित हो जायगा। जटमल की रचनाओं से उस के व्यक्तित्व, काव्य-प्रतिभा आदि का भली-भाँति परिचय मिल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी भाषा में जैन कवियों की सैकड़ों रचनाएं साहित्यिक विद्वानों से अज्ञात जैन ज्ञान-भंडारों में पड़ी हैं। बीकानेर में भी हिंदी के बहुत से अप्रसिद्ध ग्रंथों के अवलोकन का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन वैष्णव-संप्रदाय

[लेखक—डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० (इलाहाबाद)]

(क्रमागत)

४—रुद्रसंप्रदाय

यह पहले कहा गया है कि इस संप्रदाय का विशेष प्रचार वल्लभाचार्य ने किया। इन्हों ने अपने मत को 'शुद्धाद्वैत' के नाम से चलाया। इन के मत में ब्रह्म ही एकमात्र तत्त्व माना गया है। अन्य सभी वस्तुएं ब्रह्म से अभिन्न हैं, और इसी लिए नित्य भी हैं।[१] यथार्थ में जगत् अक्षय और नित्य है, किंतु विष्णु की माया से इस का आविर्भाव और तिरोभाव या उत्पत्ति और नाश होता है।[२] व्यवहारदशा में भी सभी वस्तुएं ब्रह्मस्वरूप मानी जाती हैं। इस संप्रदाय के लोग धर्म और धर्मी में तादात्म्य-संबंध मानते हैं, इस लिए घृत के द्रवत्व रूप धर्म के समान आगंतुक प्रपंचरूप धर्म को ब्रह्मरूप धर्मी से भिन्न नहीं मानते। माया को भगवान् की शक्ति मान कर शक्ति और शक्तिमान् में अभेद मानते हुए, इन के मत में एक-मात्र ब्रह्म ही प्रमेय रह जाता है।[३] निराकार, सच्चिदानंद तथा सर्वभवनसमर्थ (सभी होने के योग्य) ब्रह्म बिना किसी निमित्त के अपने अंश से, धर्मरूप से, क्रियारूप से तथा प्रपंच-रूप से देख पड़ता है। ब्रह्म धर्मरूप से पहले ज्ञान, आनंद, काल, इच्छा, क्रिया, माया तथा प्रकृति के रूप में रहता है। किंतु ऐसा सर्वदा नहीं रहता। आपादक-हेतुस्वरूप काल पहले नहीं रहता और उस के आविर्भाव होने पर वही काल इस का नियामक बन जाता है, इसी लिए उक्त अवस्था सर्वदा एक सी नहीं रहती है। काल के साथ-साथ उत्पन्न इच्छा आदि शक्तियों का सदा एक-सा रहना भगवान् ने ही किया, अतएव ये भी नित्य हैं। इस में

[१] 'पुरुषोत्तम-प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५४ [२] स्मृतिप्रमाण।
[३] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल ही क्रियाशक्तिरूप है। 'इच्छा' तो 'अभिध्यान-स्वरूपा' अर्थात् संकल्पात्मिका है। इसी को 'काम' भी कहते हैं, जैसा कि श्रुति में कहा है—'सोऽकामयत'। भगवान् तदाकार ही हैं। संकल्प के दो भेद हैं—'बहुस्यां' (मैं बहुत हो जाऊं) और 'प्रजायेय'[1] (उत्पन्न हो जाऊं)।

इन दोनों संकल्पों में पहला तो भेद बतलाता है, इस लिए काल से अतिरिक्त क्रिया, ज्ञान तथा आनंद-रूप सत्, चित् और आनंद-रूप ब्रह्म का धर्म अपने में भेद दिखलाते हुए अपने आश्रय ब्रह्म को भी भिन्न करता है अर्थात् उसे भी क्रियावान्, ज्ञानी तथा आनंदवान् बनाता है। इस प्रकार सत्-चित्-आनंद-रूप ब्रह्म भी हाथ पैर वाला हो कर साकार रूप धारण कर लेता है। परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार भिन्न होने पर भी अपनी इच्छा से अभिन्न रह कर अखंड ही ब्रह्म है।

माया

ब्रह्म की शक्ति उस के सत्-अंश की क्रियारूपा तथा चित्-अंश की व्यामोहरूपा 'माया' है। यह त्रिगुणा है। यह संसार की कर्तृरूपा माया का अंश है और जगत् की उत्पत्ति में आनंदरूप का कारण भी है।[2] किंतु जगत् का कर्तृत्व भी माया में भगवान् की इच्छा ही से है, वास्तव में मूलकर्तृत्व माया में नहीं है।[3] ज्ञान और क्रिया ये दोनों भगवान् की शक्तियां हैं। आनंद ज्ञानशक्तिमान् तथा क्रियाशक्ति वाला हो जाता है, क्योंकि आनंद तो ब्रह्म ही है। ऐसी स्थिति में चिदंश की शक्ति जो व्यामोहिका माया है (जिसे हम अविद्या भी कहते हैं) वह चिदंश से जब ज्ञानरूप धर्म पृथक् हो जाता है तब उसे अज्ञान में डाल देती है।

जीव

यद्यपि भगवान् बोधरूप हैं तथापि ज्ञान के अभाव से मुग्ध हो जाते हैं और यह समझ कर कि आनंद तो अलग है उस के संबंध से आनंद हो जायगा इस लिए माया के साथ मिल जाते हैं। तब व्याकुल हो कर आनंद से किए हुए सृष्टि में जो 'सूत्रात्मा' था, जो दशविध प्राणभूत था उस का अवलंबन ले कर रहते हैं। इस प्रकार प्राण-धारण का प्रयत्न करते हुए चिदंश को 'जीव' कहते हैं। सत्-अंश क्रियाशक्ति के अलग हो जाने पर अव्यक्त और जड़ हो जाता है। पश्चात् मूलभूत जो क्रिया उस के अंश से 'जीव' शरीरादि रूप से अभिव्यक्त

---

[1] 'तैत्तिरीय उपनिषद्' २–६ [2] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५५ [3] वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है। और जब वह क्रिया बाद को उस के धर्म में लीन हो जाती है तब यह भी तिरोहित हो जाता है। इसी प्रकार चित्-रूप भी ज्ञान-शक्ति के अंश-रूप ज्ञान के द्वारा अभिव्यक्त तथा तिरोहित होता है। इसी तरह आनंद-रूप का भी विभाग होता है।

भगवान् में संसार के पालन तथा नाश इन दोनों की इच्छा रहती है। इन दोनों इच्छाओं से सत्-चित् तथा आनंद रूप से क्रमशः सत्-अंश से जीव के बंधन समूहभूत प्राण आदि जड़, चित्-अंश से जीव, आनंद अंश से जीव का नियामक तथा अंतर्यामियों के स्फुलिङ्ग की तरह आविर्भाव होता है। बद्ध जीवों को जिन्हें भगवान् उस पूर्णज्ञान-शक्ति को देते हैं वे उस मोहिका माया को तथा प्रयत्न को छोड़ देते हैं, केवल अपने स्वरूप चित्-रूप में स्थित रहते हैं, और अपराधीन भी हो जाते हैं। किंतु उस जीव में जगत्-कर्तृत्व नहीं होता। मायाशक्ति उस में नहीं रहती। उस जीव में आनंद ही के उत्कृष्ट होने के कारण और दूसरा कोई उत्कर्ष नहीं रहता। फिर भी हीनता इस में रहती है। आनंद के साथ मिल जाने से आनंद तो यह होता ही है। इसे ही वल्लभमत में 'सृष्टि-प्रकार' कहा है।[1]

'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इस श्रुति के अनुसार 'नाम-सृष्टि' और 'रूपसृष्टि'—दो प्रकार की सृष्टि कही गई है। 'रूपसृष्टि' का कारण पंचात्मक भगवान् हैं। अर्थात् तत्त्व तो एकमात्र ईश्वर ह, किंतु उस के पाँच अंग हैं, जैसा कि भागवत में कहा है—

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।
वासुदेवात् परो ब्रह्मन्न चाऽन्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥[2]

'द्रव्य' से माया समझना चाहिए। पश्चात् इसी से महाभूत आदि भी लिए जाते हैं। 'कर्म' जगत् का निमित्त-कारण तथा भूतों का संस्काररूप भी है। 'काल' गुणों का क्षोभक अर्थात् साम्यावस्था को नाश करने वाला तथा निमित्तरूप भी है। यही 'काल' आधार-रूप में सभी जगह दिखाई पड़ता है। 'स्वभाव' परिणाम का कारण है। 'जीव' भगवान् का अंश-स्वरूप भोक्ता है।

अवांतर सृष्टि में 'अधिष्ठान' अर्थात् शरीर, 'कर्त्ता' जीव, 'इंद्रिय', 'नाना प्रकार की

---

[1] **'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५५**
[2] **'सुबोधिनी', पृ० ६६**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेष्टा' अर्थात् प्राण के धर्म, 'दैव' अर्थात् भगवान् की इच्छा ये माने जाते हैं। ये सब तत्त्व 'रूपसृष्टि' में कहे गए हैं। 'नामसृष्टि' में एकमात्र सूत्ररूप भगवान् सुषुम्ना के मार्ग से शब्द-ब्रह्मरूप में प्रकाशित होते हैं। पश्चात् यही शब्द-ब्रह्म नाद, वर्ण आदि रूप में प्रतीत होते हैं।

प्रमेयनिरूपण

प्रमेय अर्थात् जानने के योग्य वस्तु एकमात्र ब्रह्म ही है यह पहले कहा गया है किंतु संसार दशा में जब ब्रह्म साकार हो जाता है तब उसी के अनेक रूप हो जाते हैं। परंतु यह सब ब्रह्म से सभी दशा में अभिन्न रहते हैं। अस्तु, इन प्रमेयों को वल्लभाचार्य ने तीन भागों में विभक्त किया है—स्वरूपकोटि, कारणकोटि तथा कार्यकोटि। इन का क्रमशः यहां संक्षेप में विवरण दिया जाता है।

स्वरूपकोटि

इस में कर्म, काल, स्वभाव तथा अक्षर ये चार तत्त्व हैं। यथार्थ में कर्म, काल और स्वभाव ये तीनों अक्षर ही के रूपांतर हैं।[1] इस लिए सब से पहले 'अक्षर' का विचार किया जाना आवश्यक है।

१—अक्षर—अक्षर का लक्षण बताते हुए कहा है —

प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ परमात्माऽभवत् पुरा।
यद्रूपं समधिष्ठाय तदक्षरमुदीर्यते ॥

'अक्षर' वही रूप है जिसे अधिष्ठान रूप में स्वीकार कर परमात्मा ने प्रकृति और पुरुष रूप धारण किया। अर्थात् अक्षर-ब्रह्म प्रकृति और पुरुष का भी कारण है।[2] यही अक्षर ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा इन दोनों से विशिष्ट तीनों स्वरूपों का मूलभूत, ज्ञान-प्रधान, गणितानंद, ब्रह्म, कूटस्थ, अव्यक्त, असत्, सत् तथा तम इत्यादि शब्दों से कहा जाता है। इसी को 'वैकुंठ' भी कहते हैं।[3]

२—काल—अक्षर का स्वरूपांतर 'काल' है। वस्तुतः सच्चिदानंद काल का स्वरूप है, किंतु व्यवहार में किंचित् सत्त्व के अंश से प्रकट 'काल' स्वरूप कहलाता है। यह अतींद्रिय

---

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५७
[2] वही, पृ० ५६ [3] वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। लौकिक कार्य के अनुसार 'काल' का लक्षण 'नित्यग तथा सब का आश्रय और सब का उद्भव' है। इसी काल से चिर, शीघ्र तथा अतीत, अनागत आदि व्यवहारों की उत्पत्ति होती है। इस का प्रथम कार्य सत्त्व, रजस्, तथा तमस् इन गुणों का क्षोभ करना है। सूर्य आदि इस काल के आधिभौतिक रूप हैं, परमाणु[1] से लेकर चतुर्मुख के आयु-पर्यंत आध्यात्मिक रूप है, तथा भगवान् स्वयं इस का आधिदैविक रूप हैं, जैसा कि भगवान् ने कहा है--'कालोऽस्मि' (मैं काल हूं)।

३--**कर्म**--'कर्म' भी 'अक्षर' ही का रूपांतर है। 'विधि और निषेध रूप से लौकिक-क्रिया के द्वारा प्रदेशतः अभिव्यंजन के योग्य व्यापक-क्रिया ही' 'कर्म' का लक्षण है। इसी को अपूर्व, अदृष्ट तथा धर्माधर्म भी कहते हैं। 'अदृष्ट' आत्मा का गुण नहीं है यह भी इसी से सिद्ध होता है। कर्म नाना नहीं है। कर्म की अभिव्यक्ति के अनंतर तथा फल समाप्ति-पर्यंत इस का प्राकटच (अर्थात् स्थिति) रहता है और फलभोग की उत्पादक क्रिया के द्वारा क्रमशः यह तिरोभूत होने लगता है। इस का प्रधान कार्य जन्म है, जैसा कहा है--

कर्मणा जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत्।

४--**स्वभाव**--यह परिणाम का हेतु है। 'भगवान् की इच्छा का कारक' इस का स्वरूप है। भगवान् की इच्छा से यह भिन्न है। यह व्यापक होने के कारण सभी को अपने नीचे दवा कर स्वयं प्रकट होता है। कभी-कभी परिणामरूप कार्य से इस का अनुमान भी होता है।

प्रमेय का दूसरा भाग 'कारण-कोटि' है। इस के अंतर्गत २८ तत्त्वों का विचार है। ये भगवान् के भावरूप होने के कारण ही तत्त्व कहलाते हैं। भगवान् की जो कारणता

कारणकोटि

है वह लोक में २८ प्रकार से प्रकट होती है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् ये तीन गुण; पुरुष; प्रकृति; महत्तत्त्व; अहंकार; शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पाँच तन्मात्रा; आकाश, वायु, तेजस्, जल तथा पृथिवी ये पाँच भूत; पाँच ज्ञानेंद्रिय और पाँच कर्मेंद्रिय; और मनस्—कारणकोटि के अंतर्गत ये २८ तत्त्व वल्लभ ने माने हैं। संक्षेप में इन का वर्णन यहां दिया जाता है।

---

१ 'परमाणु' उस काल को कहते हैं जिस में सूर्य का रथचक्र परमाणुमात्र प्रदेश को व्याप्त करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—**सत्त्व**—सुख का अनावरक (अर्थात् आवरण न करने वाला), प्रकाशक तथा सुखात्मक, और सुख तथा ज्ञान की आसक्ति से जीवों की देहादि के प्रति आसक्ति का कारण 'सत्त्व' गुण है। यह स्फटिक की तरह निर्मल है।[1]

२—**रजस्**—यह रागस्वरूप है। तृष्णा और प्रीति का जनक है, कर्म की आसक्ति से जीवों की देहादि के प्रति अत्यंत आसक्ति का जनक है।[2]

३—**तमस्**—यह अज्ञान की आवरण शक्ति से उत्पन्न है। सब प्राणियों को मोह में डालने वाला है, और असावधानता, आलस्य तथा निद्रा से जीवों में अपने देह के प्रति आसक्ति उत्पन्न कर उन्हें बंधन में डालता है।[3]

ये गुण जब भगवान् ही से उत्पन्न होते हैं तब इन्हें माया, चित्-शक्तिरूप या आनंदशक्तिरूप समझना चाहिए। स्थिति अवस्था में जब रजस् और तमस् सत्त्व को दबा कर उन्नत होते हैं तब सत्त्व स्वयं दुर्बल हो जाता है और कार्य-रूप में वर्त्तमान रजस् एवं तमस् को दबाने के लिए भगवान् की प्रार्थना कर उन्हें अवतार-रूप में संसार में प्रगट करता है। भगवान् तब सत्त्व ही को प्रधान बना कर नाना स्वरूप धारण करते हैं। सत्त्व के अवयव भी पृथक्-पृथक् रूप धारण करते हैं। इस प्रकार सभी युग में अपने अंशभूत धर्म की स्थापना करने के निमित्त तथा सत्त्व की सहायता करने के उद्देश्य से भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं।[4]

जब 'तन्मायाफलरूपेण' इत्यादि 'भागवत' के वचन के अनुसार माया उभयात्मिका चित्-शक्तिरूपा गुणमयी हो जाती है, तब ये तीनों गुण पुरुष की अनुमति से माया के द्वारा वैषम्य को पाकर प्रकृति के धर्म हो जाते हैं, और इन से हिरण्मय महत्तत्त्व आदि की उत्पत्ति होती है। भगवान् स्वयं निर्गुण होते हुए भी सत्-अंश से सत्त्व को, चित्-अंश से रजस् को, तथा आनंद-अंश से तमस् को उत्पन्न करते हैं। द्वितीय कल्प में सच्चिदानंदात्मक ब्रह्म से माया उत्पन्न होती है और उस के बाद गुणों का वैषम्यरूप तथा महत्तत्त्वादि की उत्पत्ति आदि होती है।

४—**पुरुष**—'पुरुष' को ही 'आत्मा' भी कहते हैं। देह, इंद्रिय आदि को दूसरे के

---

[1] 'गीता' १४–६ [2] वही, १४–७ [3] वही, १४–८
[4] 'भागवत', १–१०–२४; 'गीता', ४–७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमित्त जो 'अतति'—'व्याप्नोति'—'अधितिष्ठति' अर्थात् धारण करता है वही 'आत्मा' है। यह अनादि, निर्गुण तथा प्रकृति का नियामक है। अहं-रूप ज्ञान से यह जाना जाता है। यह स्वयं-प्रकाश है। संसार के गुण तथा दोषों से मुक्त रहते हुए भी यह सभी वस्तुओं से संसर्ग रखता है। मुक्ति का यह उपकारक है। यह देह, इंद्रिय, प्राण, मन तथा अहंकार से अतिरिक्त है।

इस निर्गुण आत्मा में भी कर्तृत्व आदि गुण जो कहा जाता है वह सृष्टि के अनुकूल भगवान् की इच्छा से तथा प्रकृति आदि के अविवेक से है। अर्थात् यह सगुणत्व आत्मा में आगंतुक धर्म है, स्वाभाविक नहीं है। अन्यथा इस में मुक्ति-योग्यता ही नहीं हो सकती थी और तब मोक्ष-प्रतिपादक सभी श्रुतियां व्यर्थ हो जातीं।

यह पुरुष अनेक नहीं है किंतु एक ही है।[1] शास्त्र में कहा है कि कालचक्र के कारण प्रकृतिरूपा गुणमयी माया में शक्तिमान्-भगवान् आत्मस्वरूप-पुरुष के द्वारा अपनी शक्ति (वीर्य) को रखते हैं। इस प्रकार करण-रूप में इस 'पुरुष' की अपेक्षा होती है।[2] इसी पुरुष को सांख्यांतर में (अर्थात् योग में) 'ईश्वर' कहते हैं। और इसी बात को आचार्य ने 'भागवत' की टीका 'सुबोधिनी' में भी कहा है—"पुरुष एक ही है। पुरुष और ईश्वर में कुछ भी विलक्षणता नहीं है, इस लिए इन्हें दो मानना व्यर्थ है।" अतएव जीव और ईश्वर में भी स्वाभाविक भेद नहीं है, वे तो केवल अवस्था के भेद से दो मालूम होते हैं। अतः जीव, ईश्वर और पुरुष ये शब्द एक ही तत्त्व के नाम हैं। यह तो तत्त्वकथन है, किंतु व्यावहारिक दशा में (प्रकृते तु)—'पुरुष' द्वारभूत भगवान् का अंश है और 'ईश्वर' भगवान् स्वयं हैं। 'जीव' पुरुष-तत्त्व से भिन्न है। परंतु चित्-रूप होने के कारण एक ही जाति के दोनों हैं। अथवा पुरुष ही का अंश 'जीव' है। किंतु 'त्वं आत्मना आत्मानं अवेहि' इस स्थल में अक्षरांश और पुरुषांश के भेद होने के कारण 'जीव' भी दो प्रकार का माना जाता है।[3] लौकिक दशा में जीव से भिन्न ईश्वर तो मानना ही पड़ेगा, अन्यथा भोग का नियम ठीक से नहीं हो सकता है। 'कर्म' इसी ईश्वर के अधीन है। जैसा श्रुति में भी कहा है—"एष उ एव साधु कर्म कारयति"। प्रकृति और पुरुष का संयोग भी ईश्वर के बिना नहीं हो सकता। यह संयोग अनादि नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसा होने से मोक्ष की चर्चा भी नहीं हो

[1] 'गीता', १०–२० [2] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६० [3] वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है। इस लिए ईश्वर ही इस संयोग का अधिष्ठाता माना जाता है।

५--प्रकृति--इसे 'प्रधान' भी कहते हैं। यह भगवान् का मुख्य रूप है। इसे जगत् के उपादानरूप में भगवान् ने बनाया। यह साम्यावस्था में प्राप्त तीनों गुणों का स्वरूप-भूत तत्त्व है। जिस प्रकार सच्चिदानंदरूप ब्रह्म में क्रिया, ज्ञान और आनंदरूप धर्म रहते हैं, उसी प्रकार यह प्रकृति त्रिगुणात्मिका होती हुई भी इस में अंशतः उद्गत तीनों गुण भी रहते हैं। अतएव इस मत में प्रकृति और गुणों में 'धर्म-धर्मिभाव' भी है। तीन प्रकार की सृष्टि करने के लिए भगवान् ने प्रकृति को ये तीन ऐश्वर्य दिए हैं। ये सत्, चित् तथा आनंद के अंश माया-रूपा प्रकृति में रहते हुए प्रकृति को 'प्रधान' बनाते हैं।

किसी प्रकार काल आदि के द्वारा यह अभिव्यक्त नहीं हो सकता है अतएव यह 'अव्यक्त' है। और इसी लिए यह नित्य भी है, क्योंकि अभिव्यक्त होने ही से अनित्य हो जाता और पुनः इस से सृष्टि न हो सकती थी। प्रकृति के साथ-साथ काल आदि भी उत्पन्न होते हैं और इसी के साथ इन की स्थिति तथा लय भी होता है।

यह सत् और असत् स्वरूपा है। कार्य और कारण में यह भी भेद नहीं मानते। यह ज्ञान का हेतु भी है, अन्यथा संसारी लोग विवेक नहीं कर पाते और फिर न मुक्त हो सकते थे। यह वैराग्य का भी कारण है, क्योंकि यह सभी विशेषों को आत्मा को दिखा कर फिर निवृत्त हो जाती है। प्रकृति और पुरुष में यद्यपि अन्यत्र स्वस्वामिभाव संबंध है, किंतु यहां वीर्याधान के कारण उन में संयोग-संबंध भी है। प्रकृति और पुरुष दोनों ही साकार हैं, यह भगवान् के साकार होने ही से सिद्ध होता है। इस लिए इन में भी शरीर, इंद्रियादि होते हैं।[१]

प्रकृति के भी दो भेद माने गए हैं--व्यामोहिका माया और मूलप्रकृति। अन्यथा संसार में अवस्था का भेद नहीं हो सकता था। भगवान् की इच्छा से जब मायारूप प्रबल रहता है तब तो पुरुष बद्धावस्था में प्राप्त हो कर 'जीव' कहलाता है, और जब मूलप्रकृति की अवस्था आती है तब स्वरूप ही में स्थित होकर आत्मा जगत् का कारण होता है।[२]

६--महान्--यह क्षुब्ध गुणों से उत्पन्न होता है। क्रियाशक्तिमान् प्रथम विकार

---

[१] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६३ [२] वही, पृ० ६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो 'अर्थ' है और ज्ञानशक्तिमान् 'महान्' है किंतु एक सूत्र में बँधे होने के कारण अर्थात् सर्वथा एक में मिल जाने से ये दोनों एक ही तत्त्व माने गए हैं। ज्ञान तथा क्रिया-शक्ति के कारण एक ही तत्त्व दो मालूम होता है। इस महत्तत्त्व का शरीर हिरण्मय है। कूटस्थ में रह कर अपने आधारभूत-विश्व का यह व्यंजक है और सात्त्विक है। जगत् का यह अंकुर कहलाता है। और यह अत्यंत घन तमस् का नाशक है। यह भगवान् के आविर्भाव का स्थान है। इसी को 'शुद्धसत्त्व' कहते हैं। इसी को 'चित्तत्त्व' भी कहते हैं।[1] इन के मत में बुद्धि और महान् ये दो पृथक् पदार्थ हैं।

७——अहंकार——यह 'महत्' से उत्पन्न होता है। इसे विमोहन, वैकारिक, तैजस्, तामस्, अहं, तन्मात्रा——इंद्रिय एवं मनस् इन तीनों का कारण तथा चित्-अचित्-मय कहते हैं। यह चित् का आभास होने से चित् और अचित् इन दोनों का ग्रंथिरूप है। दिग्, वात, अर्क, प्रचेतस्, अश्विनीकुमार, वह्नि, इंद्र, उपेंद्र, मित्र, तथा चंद्र इन का भी जनक 'अहंकार' है। 'संकर्षण' रूप का यह अधिष्ठान है। कर्तृत्व, करणत्व तथा कार्यत्व भी इस में हैं। फिर शांत, घोर और मूढ़ स्वरूप वाला भी यह है। प्राण और बुद्धि इसी के रूपांतर हैं, जैसा कि कहा है——

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः बुद्धिः प्राणस्तु तैजसः।

इन्हीं रूपांतरों के होने से 'अहंकार' में सब इंद्रियों को बल देने की शक्ति, द्रव्यस्फुरणविज्ञान, इंद्रियानुग्राहकत्व, तथा संशय आदि पाँच वृत्तियां हैं।

८——तन्मात्रा——भूतों की सूक्ष्म अवस्था को 'तन्मात्रा' कहते हैं। इस में 'विशेष' नहीं रहता। अहंकार से यह उत्पन्न होता है और अन्य तत्त्वों को उत्पन्न करता है। इस के पाँच भेद हैं——शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध। ये योगियों को ही दृष्टिगोचर होते हैं। विशेष अवस्था में ही ये हम लोगों के दृष्टिगोचर होते हैं, जैसा कि सांख्य में कहा गया है——

बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पंच विशेषाविशेषविषयाणि।[2]

इस विषय में वल्लभ और सांख्यमत में कोई भेद नहीं है। क्रम से इन पाँच 'तन्मात्राओं' के विशेष लक्षण यहां दिए जाते हैं :——

---

[1] **'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६४**
[2] **'सांख्यकारिका', ३४**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क--शब्द--श्रोत्रेंद्रिय से ग्रहण करने के योग्य तथा धर्मवान् 'शब्द' है। शब्द को 'नभस्तन्मात्रं' अर्थात् आकाश का तन्मात्र[१] तथा द्रष्टा और दृश्य का लिंग[२] भी कहा है। जैसे शब्द सुन कर उस के उच्चारण करने वाले का ज्ञान होता है तथा टंकार आदि शब्द सुन कर टंकार शब्द उत्पन्न करने वाले वस्तु का ज्ञान होता है।[३] कार्य-अवस्था में शब्द सविशेष हो जाता है और यह पाँचों भूतों का गुण है, अर्थात् शब्द सभी भूत में रहता है।[४] इस लिए भेरी से उत्पन्न शब्द पृथ्वी का गुण है, क्योंकि भेरी पार्थिव वस्तु है। और कार्यभूतवस्तु में वर्त्तमान शब्द विसरणशील तथा सावयव भी है। कार्यवस्तु में रहने वाला शब्द उदात्त आदि वैदिक तथा षड्ज आदि लौकिक स्वर के भेद से अनंत प्रकार का है। शब्द स्पर्शवान् भी है। जैसे किसी वाद्य से उत्पन्न शब्द गत स्पर्श का, तथा मर्म को छूने वाले शब्द से उत्पन्न स्पर्श का हृदय में त्वचा के द्वारा अनुभव होता है अतएव वल्लभ ने शब्द में स्पर्शरूप गुण को माना है। इस के बिना 'न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत्' (किसी को मर्मस्थान में न छूना चाहिए) इस प्रकार की स्मृति व्यर्थ हो जायगी। 'गुणे गुणानंगीकारात्' (एक गुण में दूसरा गुण नहीं माना जाता है) नैयायिकों के इस कथन को ये लोक-प्रत्यक्ष-विरुद्ध मान कर टाल देते हैं।[५]

शब्द के नित्य होने के संबंध में वल्लभाचार्य का कथन है कि वेद को नित्य मानते हुए उसी का अंशभूत वर्ण यथार्थ में नित्य है ही। फिर भी लोक में उस का सुनाई देना या न देना यह तो शब्द के आविर्भाव और तिरोभाव रूप धर्म के कारण होता है। हृदयाकाश में प्रथम भगवान् या ब्रह्म 'नाद'-रूप में अभिव्यक्त होते हैं। शब्द पहले तो अव्यक्त रहता है पश्चात् नानावर्णादि-संकल्पक-मनोमय सूक्ष्मरूप को प्राप्त कर भगवान् के मुख से प्रकट होता हुआ मात्रा, स्वर, वर्ण रूप में स्थूल-भाव से ब्रह्मात्मक वेद-रूप में वही सूक्ष्म शब्द प्रकाशित होता है। वह नाद-व्यापक होने के कारण हम लोगों के अंदर भी प्राणघोष रूप में रहता है। श्रोत्र (कान) की वृत्ति को निरोध करने पर भगवान् के ही द्वारा जीव उसे सुनता है, अन्यथा द्वार के बंद होने के

---

[१] 'भागवत'--तृतीयस्कंध।
[२] 'वही'--द्वितीयस्कंध, २५ [३] 'सुबोधिनी', २-२५
[४] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६५
[५] वही, पृ० ६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण वह सुनाई नहीं देता। इसी नाद को 'स्फोट' भी कहते हैं। अतएव यही नाद सुषुम्ना-नाड़ी के द्वारा, मूलाधार, हृदय, कंठ तथा मुख में परा, पश्यंती, मध्यमा तथा वैखरी रूप में प्रकट होता है। जिस प्रकार ब्रह्म के सत्, चित् और आनंद नाम हैं उसी प्रकार शब्द-रूप ब्रह्म के वर्ण, पद और वाक्य नाम हैं। वास्तविक भेद इन में नहीं है, किंतु काल्पनिक है। शब्द सर्वगत है अतएव नानादेश में स्थित वक्ता के प्रयत्न से उन-उन देशों में शब्द सहज में अभिव्यक्त होता है। इस के सर्वगतत्व होने में अबाधित प्रत्यभिज्ञा ही प्रमाण है। और इसी लिए सूर्य के समान एक ही समय में अनेक स्थलों से शब्द की स्थिति दिखाई पड़ती है।[1]

'शब्द' की उत्पत्ति में अंदर और बाहर वायु ही निमित्त कारण है। इस के समवायी तो पाँचों भूत हैं। विशेष कर आकाश और अन्यभूत सामान्यरूप से। जहां पर ध्वनि अभिव्यक्त होती है, वहां से कुछ दूर तक चारों ओर तो वह स्वभाव ही से स्वयं जाता है, क्यों कि यह 'विसारी' है। बाद को वायु इसे दूर-दूर ले जाता है। इस तरह स्थानांतर में जाता हुआ शब्द अपना थोड़ा-थोड़ा अंश भिन्न-भिन्न कानों में लीन करता (रखता) जाता है। जब इस के सभी अंश लीन हो जाते हैं तब वह आगे को लोगों को सुनाई नहीं देता। अंत में स्वभाव ही से या काल आदि के द्वारा उस का नाश हो जाता है। शब्द का अंश-अंश कर के नाश होते हुए देख कर इसे निरवयव कहना ठीक नहीं है।[2]

ख---स्पर्श---त्वगिंद्रिय से ग्रहण करने योग्य 'स्पर्श' है। 'वायुतन्मात्रत्वं' इस का लक्षण है। कार्यवस्तु में वर्त्तमान यह 'सविशेष' हो कर चार भूतों का गुण है। मात्रा-रूप में मृदु, कठिन, शीत तथा ऊष्ण---ये चार इस के भेद हैं।[3] गुणस्वरूप में मृदु, पिच्छिल (फिसलना) जैसे रेशमी कपड़े में, कठिन, शीत, ऊष्ण, अनुष्णाशीत, शीत, लघु, गुरु, संयोग आदि इस के अनेक भेद होते हैं। मृदु आदि शब्द वस्तुतः धर्मवाचक होने पर भी अधिक प्रयोग होने के कारण धर्मी के निमित्त भी प्रयोग होते हैं। लघुस्पर्श वायु, तेजस्, जल तथा भूमि में रहता है। जैसे सूक्ष्म वायु का स्पर्श, ज्वाला का स्पर्श, तूल (रुई) का स्पर्श। लघुस्पर्श होने ही के कारण तेजस् ऊपर को जाता है। जल का लघुस्पर्श गंगा, यमुना, कूप और नदी के जल को पीने से मुख में स्पष्ट मालूम होता है। इसी प्रकार गुरुस्पर्श भी जल,

---

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० २०-२१ [2] वही, पृ० २३, ६५ [3] वही, पृ० ६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु और भूमि में है। अन्य शास्त्र में 'गुरुत्व' स्पर्श से अतिरिक्त गुण माना गया है किंतु यहां स्पर्श ही का भेद 'गुरुत्व' भी है जो स्पर्श होने ही के कारण तौलने पर मालूम किया जाता है। स्पर्श के विना जहां गुरुत्व का ज्ञान होता है वहां अनुमान से होता है, न कि प्रत्यक्ष से। 'संयोग' स्पर्श से अतिरिक्त गुण वल्लभ के मत में नहीं माना जाता है। 'संयोगज-संयोग' यह नहीं मानते। 'संयोग' चक्षु से जाना जाता है और 'स्पर्श' त्वगिंद्रिय से—इस लिए ये दो गुण हैं, ऐसा समझना ठीक नहीं है, क्योंकि चक्षु में भी त्वगिंद्रिय तो है ही, इस लिए चक्षु से देखी गई वस्तु त्वगिंद्रिय से भी देखी जाती है, यह स्वीकार करना चाहिए। चक्षुरिंद्रिय में वर्त्तमान जो वायु है उस का गुण स्पर्श है, न कि चक्षु का। अतएव मन में भी स्पर्श है।[1] 'श्लेष' विभाग का अभावरूप है। 'स्नेह' भी स्पर्श ही का भेद है, क्योंकि यह भी त्वचा ही से जाना जाता है।

ग—रूप—चक्षु से ग्रहण करने के योग्य गुण को 'रूप' कहते हैं। 'तेजस्तन्मात्रत्वं' इस का लक्षण कहा है। जिस द्रव्य में यह रहता है उसी की आकृति के तुल्य इस की आकृति होती है।[2] तन्मात्र-स्वरूप में यह एक ही है। कार्यस्वरूप में भास्वर, शुक्ल, नील, पीत, हरित, लोहित आदि 'रूप' के अनंत भेद हैं। 'चित्ररूप' भी एक अतिरिक्त रूप है। भास्वर-रूप दूसरे का भी प्रकाश करता है, इस लिए अपने आश्रय से अधिक देश में रहने वाला होता है। यह विसरणशील होता है।

घ—रस—रसनेंद्रिय से ग्राह्य गुण 'रस' है। 'जलतन्मात्रत्वं' इस का लक्षण है। तन्मात्रारूप में वह अव्यक्त मधुर है। कार्यवस्तु में होने से कसैला, मधुर, तिक्त, कड़ुआ, खट्टा, क्षार, (नोना) और मिश्र ये सात इस के भेद हैं। जल में अव्यक्त मधुर 'रस' है। आधारभूत वस्तु के धर्म के संबंध से 'रस' में भेद उत्पन्न होता है।[3]

ङ—गंध—घ्राणेंद्रिय से ग्राह्य गुण 'गंध' है। यह 'पृथिवी-तन्मात्र' कहलाता है। व्यक्त और अव्यक्त के भेद से यह दो प्रकार का है। कार्यरूप में करंभ (दही मिश्रित सत्तू का गंध,[4] या तरकारी आदि का मिश्र गंध), पूति (दुर्गंध), सौरभ्य (सुगंधि), शांत और उग्र (ये पूति और सौरभ्य ही के भेद हैं; कमल का गंध शांत है और चंपा या लहसुन का गंध उग्र,

---

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६७
[2] वही, पृ० ६७
[3] वही, पृ० ६८
[4] करंभो दधिसक्तवः—'अमरकोश', ६-४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है) तथा 'अम्ल', जैसे नींबू का गंध और बासी कढ़ी आदि का गंध—ये छः प्रकार के गंध हैं। इन के अतिरिक्त आवांतर भेद तो अनंत है, जैसे धूप, धूम आदि के गंध। 'गंध' अपने आश्रय से अधिक देश में रहने वाला होता है। अर्थात् इस का आश्रय-द्रव्य जहां नहीं रहता वहां भी उस द्रव्य में रहने वाला गंध रहता है। नैयायिक आदि के मत में जब किसी फूल का गंध कहीं दूर तक फैलता है तो यह समझा जाता है कि वायु के द्वारा उस फूल का भाग दूर तक चला जाता है और उसी के साथ-साथ उस की सुगंधि भी जाती है। अर्थात् द्रव्यरूप आश्रय के बिना उस का गुण कहीं नहीं जा सकता है। किंतु वल्लभाचार्य के अनुसार द्रव्य को छोड़ कर भी उस का गुण अन्यत्र चला जाता है।[1]

९—**भूत**—जिन में सविशेष शब्द आदि गुण हों उन्हें 'भूत' कहते हैं। आकाश, वायु, तेजस्, जल तथा पृथ्वी ये पाँच भूत हैं। क्रमशः इन का वर्णन यहां किया जाता है :—

क—आकाश—'अवकाशदातृत्व' (अवकाश देने वाला), या 'वहिरंतरव्यवहारविषयत्वं', या 'प्राणेंद्रियांतःकरणाधारत्वं' 'आकाश' के लक्षण कहे गए हैं। पहला लक्षण आधिदैविक है। दूसरा आधिभौतिक स्वरूप लक्षण है। यही लक्षण व्यवहार में उपयोगी भी है। आकाश जन्य है, नित्य नहीं, क्योंकि इस में विकारित्व सिद्ध होता है, जैसे 'आत्मनः आकाशः संभूतः' इस श्रुति में भी कहा है। आकाश में रूप नहीं है। परममहत् परिमाण वाला होने ही के कारण यह नीरूप भी है। आकाश में नील आदि की प्रतीति भ्रममात्र है। चक्षु अपने सामर्थ्य से आकाश का ग्राहक नहीं है, किंतु आकाश ही अपने सामर्थ्य से गंधर्वनगर अथवा पिशाच के समान अपने स्वरूप को प्रगट करता है। इस का विशेष-गुण[2] शब्द है।

ख—वायु—इस का लक्षण इन के मत में 'अरूपित्वे सति चालन-व्यूहन-द्रव्यशब्द-गन्धनयनसर्वेन्द्रियबलदानाख्यकार्यत्वम्' है। अर्थात् जिस में रूप न हो और जो डाल आदि को हिलावे, गिरे हुए पत्तों को एक जगह मिलावे, द्रव्य, शब्द, और गंध को ले जाने वाला, सभी इंद्रियों को बल (सामर्थ्य) देने वाला आदि कार्य करे वही 'वायु' है। यही प्राणरूप है। स्पर्श इस का विशेषगुण है। शब्द भी इस में कारण से आता है। इस प्रकार इस में दो गुण हैं। मीमांसक के मतानुसार इस का त्वगिंद्रिय से प्रत्यक्ष होता है।

---

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६८ [2] वही, पृ० ७१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग--तेजस्--'तेजस्' में पाचन, प्रकाशन, पान जैसे जल आदि का, अदन (भोजन) जैसे अन्न का, हिम (पाला या शीत) का मर्द्दन (नाश करना), शोषण (सुखाना) ये छः कार्य होते हैं। यथार्थ में पान और अदन ये दोनों कार्य जठराग्नि से ही होते हैं अतएव पाँच ही कर्म 'तेजस्' के हैं। क्षुधा और तृष्णा भी तेजोरूप हैं। रूप इस का विशेष गुण है। शब्द और स्पर्श इस में कारण से आते हैं। इस प्रकार तीन गुण इस में हैं।[1]

घ--जल--क्लेदन (भिगोना), पिंडन (इकट्ठा करना), तृप्ति (क्षुधा आदि की निवृत्ति करना--भोजन करने पर भी बिना जल की तृप्ति नहीं होती), प्राणन (जीवन), आप्यायन (प्राण को संतोष देना), प्रेरण (बहा ले जाना), ताप को दूर करना तथा एक स्थान में अधिक ही होकर रहना ये आठ कार्य जिस में हों वही 'जल' है। बर्फ़ आदि में दूसरे भूत के कारण कठोरपन है। जब बहुत ठंडी हवा चलती है तब जल एकत्रित हो कर 'ओला' बन जाता है। रस इसका विशेषगुण है। शब्द स्पर्श, तथा रूप इस में दूसरे से आए हुए गुण हैं। इस प्रकार इस में चार गुण हैं।

ङ--पृथ्वी--साक्षात् समस्त जगत् को धारण करने वाला द्रव्य 'पृथ्वी' है। वल्लभ 'सत्कार्यवाद' ही को स्वीकार करते हैं। गंध इस का विशेषगुण है। और चार गुण इस में अन्यत्र से आते हैं। इस प्रकार पाँच गुण इस में हैं।

१०--इंद्रिय--'तैजसाहङ्कारोपादेयत्वे सति (तैजस्रूप अहंकार से इंद्रिय की उत्पत्ति होती है) ज्ञानक्रियान्यतरकरणं 'इंद्रिय' का लक्षण है। देह से संयुक्त रह कर अपने फल से आत्मा का जो ज्ञान करावे वही 'इंद्रिय' है। ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय के भेद से 'इंद्रिय' दो प्रकार के हैं। श्रोत्र आदि पाँच 'ज्ञानेंद्रिय' हैं और वाक् आदि पाँच 'कर्मेंद्रिय' हैं। ये सभी अभौतिक हैं। भगवान् की इच्छा से, गुणों के परिणाम के भेद से, तथा शरीर के अंगों के सन्निवेश के भेद से एक ही तैजस्-अहंकार से भिन्न-भिन्न इंद्रियों की उत्पत्ति में कोई बाधा नहीं है। ये इंद्रियां अणु-परिमाण की और अनित्य भी हैं।

इन में 'चक्षु' उद्भूत-रूप और उद्भूत-रूपवान् तथा संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग तथा कर्म और इनकी जाति तथा समवाय का ग्राहक है। इसी लिए परमाणु, पिशाच आदि का चक्षु से ग्रहण नहीं होता। रूप द्वारा ही

---

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ७१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चक्षु' द्रव्य का भी ग्राहक है। त्वगिंद्रिय से उक्त संख्या आदि सभी गुण, उद्‌भूतस्पर्श तथा उद्‌भूतस्पर्श वालों का, उक्त गुणों की जाति और समवाय इन सब का ग्रहण होता है। इसी प्रकार घ्राणेंद्रिय से ग्रहण योग्य उद्‌भूतगंध, और उद्‌भूतगंध वाला, उन की जाति और समवाय हैं। इसी तरह रसनेंद्रिय और श्रवणेंद्रिय को भी जानना चाहिए।

ये दश इंद्रियां राजस हैं, क्योंकि राजस बुद्धि और प्राण से इन का ग्रहण होता है। इन में से चक्षु, घ्राण, हाथ और पैर इन के दो-दो रूप हैं, किंतु ये प्रत्येक एक ही एक इंद्रिय हैं। ज्ञानेंद्रियां अपने वस्तुओं के साथ मिल कर ही ज्ञानजनक होती हैं।

११---**मन**---'मन' संकल्प और विकल्पात्मक है। इसे उभयात्मक कहते हैं, क्योंकि यह दोनों प्रकार के कार्यों को करता है। इच्छा (काम) की उत्पत्ति इसी के अधीन है। यह भी एक इंद्रिय है। सुख, दुःख, प्रयत्न, द्वेष, अदृष्ट, स्नेह आदि इसी 'मन' के गुण हैं, न कि आत्मा के। यह भी जन्य है, जैसा कि 'तन्मनोऽसृजत्' इस श्रुति में भी कहा है। अणु इस का परिमाण है। इस के दो प्रकार के कार्य होते हैं---आंतर और बाह्य।

सामान्य-का 'आकृति' और 'व्यक्ति' में सन्निवेश किया गया है।

'ज्ञान' ब्रह्मस्वरूप ही है, जैसा श्रुति में भी कहा है---'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म'।

ज्ञान

जब-जब भगवान् सृष्टि की इच्छा करते हैं तब-तब उन का आविर्भाव होता है, इस लिए 'ज्ञान' का अनंत भेद होने पर भी यहां केवल दश प्रकार का 'ज्ञान' माना गया है। इन में चार प्रकार का 'ज्ञान' नित्य है। पहला-सब का आत्मस्वरूप, सब का उपास्य, मुख्य, विकार-रहित आत्मा का अपना ही स्वरूप है, जिसे गीता (१०-२०) में कहा है---'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः'। स्वरूपतः यह नित्य है।

यही 'ज्ञान' जब प्रकाश रूप में आविर्भूत होता है, तब वह भगवान् का गुणस्वरूप कहलाता है, जैसा कहा है---"ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणे"। ऐश्वर्य संपन्न में वह नित्य है और जीव तथा भगवान् के पार्षद आदि में उन के देने से प्राप्त होता है।[1] यही 'ज्ञान' अर्थात् धर्मरूप सर्व-विषयक-ज्ञान जब सृष्टि के निमित्त भगवान् के मनोमय आदि

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाड़ी के द्वारा 'वेदरूपशरीर' धारण करता है तब वह 'तीसरा ज्ञान' कहलाता है, जैसा कि श्रुति में है--"स एष जीवो विवरप्रसूतिः" इत्यादि। वेदशरीर में भी वह ज्ञान विराट् रूप के समान अनंत है, जैसा 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में इंद्र और भरद्वाज के संवाद में स्पष्ट कहा गया है —"अनंता वै वेदाः" इत्यादि। यही बाद में विशिष्ट शक्ति वाला हो कर संसार का 'बीज' हो जाता है और इसी से सभी विकृत शब्द सृष्टि के आदि में होते हैं। यही भगवान् के आश्रित होने से 'चतुर्थ प्रकार का नित्य ज्ञान' है।

यही वेदरूप-शरीर-विशिष्ट-ज्ञान समवाय-संबंध से प्रमाता में तथा निमित्तरूप से प्रमेय में रहता है। पश्यंतीरूप-शब्द तो प्रमाता का आश्रयण करता है, जैसा कि 'वाक्यपदीय' में भर्तृहरि ने कहा है

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥[1]

अर्थात् इस लोक में (व्यवहार की अवस्था में) ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो शब्द से अनुविद्ध न हो। प्रमेय के अनंत होने से उस का आश्रयण करने वाला शब्द-शरीर-विशिष्ट-ज्ञान भी अनंत है। किंतु वास्तव में ब्रह्म ही एक मात्र प्रमेय वल्लभ के मत में है, इस विचार से यह ज्ञान एक ही है। शब्द और अर्थ तथा शब्द और ज्ञान में नित्य संबंध होने के कारण शब्दविशिष्ट ही ज्ञान प्रमेय को आश्रयण करता है। यही पंचम ज्ञान है। इस अवस्था में शब्द और अर्थ ज्ञान से अभिभूत है, किंतु पहले उलटा था।

प्रमाता में अंतःकरण और इंद्रिय को आश्रयण करने वाला 'ज्ञान' पाँच प्रकार का है। इंद्रिय में एक प्रकार का और अंतःकरण में चार प्रकार का। मन में संकल्प और विकल्प रूप से ज्ञान आश्रित है। विपर्यास, निश्चय, स्मृति आदि रूप में ज्ञान बुद्धि का आश्रित है। 'स्वप्नज्ञान' अहंकार का आश्रित है और 'निर्विषय-ज्ञान' चित्त का आश्रित है। इस प्रकार ज्ञान दशविध है।

कार्यरूप छः प्रकार के ज्ञान मन के धर्म हैं, आत्मा के नहीं; जैसा श्रुति कहती है—

कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिः
ह्रीः धीः भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति।

---

[1] कांड १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान स्थिर होता है न कि केवल तीन ही क्षण रहता है। उत्पन्न हुए ज्ञान के उद्दीपक शब्द और विषय हैं। बुद्धि, चेतन आदि इसी ज्ञान के पर्याय हैं। ज्ञान पुनः सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक होता है। 'सात्त्विक-ज्ञान' यथार्थ ज्ञान है और यही 'प्रमा' कहलाता है। 'राजसिक ज्ञान' राजस-सामग्री से उत्पन्न होता है और नाना प्रकार का होता है। यही व्यवहार का उपयोगी ज्ञान है। अतएव परमार्थ दृष्टि से राजस ज्ञान में प्रामाण्य नहीं है। 'तामस ज्ञान' भी अप्रमाण ही है। पामर तथा नास्तिकों का ज्ञान तामस है। अच्छे लोग इस की निंदा करते हैं। अतएव यह हेय है।

'राजस ज्ञान' सविकल्पक ही होता है, क्योंकि इसी से लोक में व्यवहार चल सकता है। ज्ञान यद्यपि पहले निर्विकल्पक ही होता है किंतु उस से लौकिक कार्य नहीं चलता है, और यह सात्विक रूप में एक ही प्रकार का है। वल्लभ दोनों प्रकार के ज्ञान—निर्विकल्पक और सविकल्पक—स्वीकार करते हैं। पहला तो इंद्रियाश्रित है। है तो यथार्थ में यह सात्विक किंतु राजस में ही परिगणित होता है।

संशय, विपर्यास, निश्चय, स्मृति तथा स्वाप ये पाँच 'सविकल्पक ज्ञान' के भेद हैं।[1] 'सुषुप्ति' भी स्वप्न का ही अवांतर भेद है। आत्मस्फुरण वहां स्वयं हो जाता है।[2] 'चिंता' स्मरण के अंतर्गत है। 'प्रत्यभिज्ञा' तो निश्चयज्ञान ही है।

कारण

वल्लभ के मत में 'कारण' दो ही प्रकार के हैं—समवायि और निमित्त। समवाय और तादात्म्य एक वस्तु है। प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द ये ही तीन 'प्रमाण' इन्हों ने माना है।

'आकाश' और 'काल' के समान 'दिक्' को भी इन्हों ने स्वीकार किया है। इस का ग्रहण साक्षात् नहीं होता किंतु ग्राह्य-अर्थ के विशेषण रूप से।[3]

इस प्रकार संक्षेप में उक्त चारों प्राचीन वैष्णव-संप्रदायों का वर्णन यहां किया गया है। इन में से रामानुजाचार्य तथा वल्लभाचार्य का मत विशेष रूप से आजकल भी प्रचलित है। इन की अपेक्षा अन्य दोनों संप्रदाय गौणभूत मालूम होते हैं। ये सब भक्तिमार्ग के उपासक होते हुए भी अपने-अपने उपास्य देवता के भेद के कारण परस्पर भिन्न मालूम

---

[1] 'भागवत', तृतीयस्कंध [2] 'प्रस्थानरत्नाकर' पृ० ६
[3] वही, पृ० ३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। इन सबों के उपर्युक्त तत्त्वों का विचार करने से बहुत कुछ समान बातें मिलती हैं। फिर भी भेद तो स्पष्ट ही है। तत्त्वदृष्टि से भी व्यवहारावस्था में ऐसा भेद रखना ही पड़ता है। ये भेद न केवल शास्त्रीय बातों ही में देख पड़ते हैं, किंतु उन के रहन-सहन तथा आचार और विचारों में तो और भी स्पष्ट है। पहले इन मतों के अनुयायियों में परस्पर विद्वेष नहीं था। सभी मत को सब कोई आदर-दृष्टि से देखते थे, और अपने मत का भी पालन सुचारु रूप से करते थे। किंतु बाद में दुराग्रह, आवेश, तथा बुद्धि में कलुषता और संकोच इतना अधिक हो गया कि इन में से एक के अनुयायी दूसरे मतवाले के शत्रु बन गए और उन के प्रति निंदा आदि कुत्सित व्यवहार करने में भी अपने वैष्णवत्व की ही रक्षा समझने लगे। इस से यह स्पष्ट है कि इन लोगों में पश्चात् भक्ति के उच्च आदर्श का ज्ञान भी नहीं रहा और मुझे तो यही अनुमान होता है कि ये सभी वैष्णव बहिरंग तत्त्वों ही में लिप्त हो गए हैं, और वैष्णव-संप्रदाय की अंतरंग बातों की ओर न तो इन का ध्यान है और न ये लोग उसे समझने की चेष्टा ही करते हैं। इसी कारण कहीं-कहीं इन के व्यवहार भी लौकिक दृष्टि से निंदनीय समझे जाते हैं। इन का आदर्श कितना उच्च था और किस प्रकार इन के दिव्य-दृष्टि वाले आचार्यों ने भक्ति की पराकाष्ठा का स्वयं अनुभव कर सांसारिकों के लिए भी दयावश संप्रदाय को चलाया और योग्य भक्तों को सन्मार्ग दिखाया! किंतु कैसा अधःपतन अब है! इस के यथार्थ तत्त्वों से लोग इस प्रकार अनभिज्ञ हो गए हैं कि भक्ति को 'मुक्तिप्रद' न समझकर 'भुक्तिप्रद' समझते हैं, और 'अन्धा अंधेनैव नीयमानाः' इस कहावत को प्रत्यह चरितार्थ कर रहे हैं। यही एक मात्र हेतु है कि ज्ञानमार्ग को ही अभी भी लोग निरुपद्रव, कल्याणप्रद तथा मुक्ति देने वाला समझते हैं और ज्ञानपूर्वक नामधारी इन वैष्णव मतों से दूर रहना अच्छा समझते हैं।

(समाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनारकली

[रचयिता--श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह]

कमनीय अनारकली जो थी राजमहल की दासी।
वह बनी कुमार-हृदय की स्वामिनी प्रेम की प्यासी॥

दिव में दिवांगनाएं भी थीं उसे देख कर लज्जित।
छवि के प्रकाश से उस ने नृप-सदन किया आलोकित॥

सुकुमार कुमार-हृदय की स्वर्गीय प्रेम की प्रतिमा।
ली छीन अनारकली ने नव-कुसुम-कली की सुषमा॥

अपने इस भाग्योदय पर वह फूली नहीं समाई।
पर निठुर नियति ने आकर काँटों की सेज बिछाई॥

प्रिय से मिलने को सरिता थी बहती उछल-उछल कर।
पर मिल न सकी सागर से था खड़ा बीच में भूधर॥

कामना-कुसुम तो फूले पर कभी बहार न आई।
प्रिय-प्रेम-वारि-सिंचित भी वह हेम-लता मुरझाई॥

बंदी बन गई अभागी रह सकी न सुख के घर में।
स्वप्नों का स्वर्ण-निकेतन हो गया नष्ट पल भर में॥

युवती की यौवन-सरिता मिल गई दुःख-सागर में।
जीवन की मधुर उमंगें हो गईं बंद गागर में॥

दुर्लभ आकाश-सुमन-सा था उसे मिलन प्रियतम का।
पर किया प्रेम से पालन जीवन के प्रेम-नियम का॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पल-पल प्रियतम की झाँकी देखा करती थी मन में।
बस एक यही सुख पाया उस ने बंदी-जीवन में।।

थे छिपे प्रेम-दुख दोनों उस के भीगे आँचल में।
रहती थी सदा निमज्जित वह निज अथाह दृग-जल में।।

छिप गए मनोरथ-तारे उर-नभ के दुख-बादल में।
केवल कुमार-स्मृति चपला अंकित थी अंतस्तल में।।

दुख-दलित प्राण अबला के थे नहीं निकल भी जाते।
बस प्रेम-पयोनिधि में थे डूबते और उतराते।।

कारागृह से तो छूटी पर गई अकेली बन में।
ले गई साथ स्मृति कोमल केवल कुमार की मन में।।

प्रासाद-वासिनी भावी भारत-भूपति की प्यारी।
दुखिया अनार गिरि-वन में घूमी विपत्ति की मारी।।

थी जहां-जहां वह जाती रँगती थी भूमि विपिन में।
पैरों के छाले आँसू थे बहा रहे दुर्दिन में।।

लतिकाओं से वह लिपटी फूलों को व्यथा सुनाई।
पर कहीं अनारकली ने थोड़ी भी शांति न पाई।।

सरिता के शीतल-जल में दिन भर रह गई समाई।
पर शीतलता न तनिक भी उस के जीवन में आई।।

सपने में भी प्रिय-दर्शन वह कभी नहीं थी पाती।
करने पर भी चेष्टाएं उस को थी नींद न आती।।

खाना-पीना सब छोड़ा ईश्वर में ध्यान लगाया।
तो भी सलीम तरुणी से जा सका न हाय भुलाया।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे सकी न जिस को जीवन वह बनी न उस की दासी।
पर हँसी-ख़ुशी से तरुणी चढ़ गई प्रेम की फाँसी।।

पी गई गरल का प्याला प्रिय-अधर-सुधा की प्यासी।
छिप गई शीघ्र संध्या की वह करुण अरुण आभा-सी।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन कविताएं

[रचयिता—श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत]

(१)

गंगा का प्रभात

गलित ताम्र भव : भृकुटि-मात्र रवि रहा क्षितिज से देख,
गंगा के नभ-नील निकष पर पड़ी स्वर्ण की रेख।
आर-पार फैले जल में घुल, कोमल नव आलोक
कोमलतम बन निखर रहा, लगता जग अखिल अशोक !

नव किरणों ने विश्वप्राण में किया पुलक संचार,
ज्योति-जड़ित बालुका-पुलिन हो उठा सजीव अपार।
सिहर अमर जीवन-कंपन से कँप-कँप अपने आप,
केवल लहराने को लहराता मृदु लहर-कलाप।

सृजन-तत्व की सृजन-शीलता से हो अवश अकाम
निरुद्देश जीवन-धारा बहती जाती अविराम।
देख रहा अनिमेष—हो गया स्थिर, निश्चल सरिता-जल,
बहता हूँ मैं, बहते तट, बहते तरु, क्षितिज, अवनितल।

यह विराट् भूतों का भव, चिर-जीवन से अनुप्राणित,
विविध विरोधी तत्वों के संघर्षण से संचालित।
निज जीवन के हित असंख्य प्राणी हैं इस के आश्रित,
मानव इस का शासक, आतप, अनिल, अन्न, जल शासित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-जीवन प्रकृति-संचलन में विरोध है निश्चित,
विजित प्रकृति को कर उस ने की विश्व-सभ्यता स्थापित।
देश, काल, स्थिति से मानवता रही सदा ही वाधित,
देश, काल, स्थिति को करगत कर करना है परिचालित।

क्षुद्र व्यक्ति को विकसित हो बनना है अब जन-मानव,
सामूहिक मानव को निर्मित करनी है संस्कृति नव।
मानवता के युग-प्रभात में मानव-जीवनधारा
मुक्त अबाध बहे, मानव-जग सुख-स्वर्णिम हो सारा।

(२)

गंगा की साँझ

अभी गिरा रवि ताम्र-कलश-सा गंगा के उस पार--
क्लांत पांथ : जिह्वा विलोल जल में रक्ताभ प्रसार।
धूमिल जलदों से धूसर नभ विहग-छदों से बिखरे
धेनु-त्वचा से सिहर रहे जल में रोओं से छितरे।

दूर, क्षितिज में चित्रित-सी उस तरुमाला के ऊपर,
उड़ती काली विहग-पाँति रेखा-सी लहरा सुंदर।
संध्या का ईषत् उज्वल कोमल तम धीरे घिर कर
दृश्यपटी को बना रहा गंभीर, गाढ़ रँग भर-भर।

शांत, स्निग्ध संध्या सलज्ज मुख देख रही जल-तल में
नीलारुण अंगों की आभा छहरी लहरी-दल में।
झलक रहे जल के अंचल से कंचु जलद स्वर्णप्रभ,
चूर्ण कुंतलों-सा लहरों पर तिरता घन ऊर्मिल नभ।

उड़ी आ रही हलकी खेवा दो आरोही लेकर,
नीचे ठीक तिर रहा जल में छाया चित्र मनोहर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर प्राकृतिक सुषमा यह भरती विषाद है मन में,
मानव की सजीव सुंदरता नहीं प्रकृति-दर्शन में।

पूर्ण हुई मानव अंगों में सुंदरता नैसर्गिक,
शत ऊषा-संध्या से निर्मित नारी-प्रतिमा स्वर्गिक।
भिन्न-भिन्न बह रही आज नर-नारी जीवनधारा--
युग-युग के सैकत कर्दम से रुद्ध--छिन्न सुख सारा।

(३)

कुसुम के प्रति

भाव, वाणी या रूप?
तुम क्या हो, चिर-मूक सुमन!
किस के प्रतिरूप?
मौन सुमन!
सुंदरता से अपलक चितवन
छू कोमल मर्मस्थल,
मूक सत्व के भेद सकल
कह देती (खुल दल पर दल),
सहज समझ लेता मन!

विजय रूप की सदा भाव पर,
भाव रूप पर निर्भर!
मैं अवाक् हूं तुम्हें देख कर
मौन रूपधर!
रूप नहीं है नश्वर,
सत्ता का वह पूर्ण प्रकृत स्वर
सुंदर है वह.... अमर!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरत्चंद्र की प्रतिभा

[लेखक--श्रीयुत् इलाचंद्र जोशी]

शरत्‌चंद्र के प्राणावेग की तीव्रता का ही यह फल है कि साहित्य-जगत में प्रवेश करते ही उन्हों ने जनता की प्राण-धारा को अत्यंत प्रवलता से आंदोलित कर दिया। जिस द्रुत गति से शरत्‌चंद्र ने लोकप्रियता प्राप्त की वह अभूतपूर्व थी। वर्तमान युग में भारत के अन्य किसी भी श्रेष्ठ कलाकार को अपनी पहली ही रचना से साहित्य में शीर्ष-स्थान प्राप्त कर लेने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। जब मैं शरत् बाबू से प्रायः सत्रह वर्ष पहले पहली बार मिला था तो उन्हों ने मुझ से कहा था कि जब उन की 'रामेर सुमति' शीर्षक कहानी 'यमुना' नामक एक अत्यंत साधारण सामयिक पत्रिका में छपी थी तो उस समय उक्त पत्रिका के केवल पचास ग्राहक थे। उस कहानी के छपते ही दूसरे ही महीने उस के पाँच सौ ग्राहक हो गए, और उस विशेष अंक की, जिस में उन की कहानी छपी थी, ऐसी माँग हुई कि 'यमुना' के अध्यक्ष को उसे फिर से छापना पड़ा। शरत् बाबू ने सपरिहास मुझ से कहा कि इस प्रकार वह बायरन की तरह एक विशेष रात में सो कर जब प्रातःकाल उठे तो उन्हों ने सारे बंगाल में अपने को प्रसिद्ध हुआ पाया।

मैं मानता हूं कि लोकप्रियता ही किसी कलाकार की श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं हो सकती और अधिकांश श्रेष्ठ कलाकार या तो अपने जीवन के अंतिम काल में या अपनी मृत्यु के बाद मान्य हुए हैं। पर शरत्‌चंद्र की लोकप्रियता के संबंध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रारंभ में किस श्रेणी की जनता ने उन्हें वरण किया। 'यमुना' के जो पाँच सौ ग्राहक हुए उन में से अधिकांश व्यक्ति सुरुचि-संपन्न साहित्यिक थे, यह बात मैंने शरत् बाबू के ही मुँह से सुनी है। उन साहित्यिकों के प्रचार के फल-स्वरूप जन-साधारण भी शरत्-चंद्र की मायावी कला का रस ग्रहण करने के लिए उत्सुक हो उठे और उन्हों ने अपनी बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पहुँच तथा भावना की गति के अनुसार उस में एक ऐसी विशेषता पाई जो उन्हें अपूर्व तथा अनिर्वचनीय सी लगी। साधारणतः जनता को वही रचनाएं अधिक प्रियकर लगती हैं जिन में या तो लोमहर्षक घटनाओं का वर्णन हो, या स्त्री-पुरुष संबंधी अनाचारों की उच्छृंखल क्रीड़ा का लोल-लीला-लास्य नग्नरूप में चित्रित किया गया हो। पर शरत्चंद्र की लोकप्रियता की नींव जिन दो प्राथमिक छोटी-छोटी रचनाओं ('रामेर सुमति' तथा 'बिंदुर छेले') द्वारा प्रतिष्ठित हुई है उन में ये दोनों बातें लेश-परिमाण में भी वर्तमान नहीं हैं। इन दोनों कहानियों में शरत्चंद्र ने नारी-हृदय की अत्यंत सुकुमार तथा सकरुण मातृ-वेदना को जीवन के नाना आघात-प्रतिघात, तथा संघर्ष-विघर्ष के बीच और नाना प्रति-क्रियाओं के वैपरीत्य तथा वैमनस्य के ऊपर ऐसे अदृश्य तथा अजानित रूप में विजय प्राप्त करते हुए दिखाया है कि पाषाण-प्राण भी इस मायावी कलाकार की लेखनी के मर्मस्पर्श से शत-शत अश्रुधाराओं के रूप में उच्छ्वसित हो कर फूट न पड़े, यह संभव नहीं। केवल इन्हीं दो कहानियों में नहीं, इस के बाद लिखी गई 'मेजदिदि,' 'बड़दिदि', 'निष्कृति' आदि कहानियों में भी हम शरत्चंद्र की अनुभूति-प्रवणता की वही अंतःस्पर्शी सहृदयता, वही सूक्ष्मतम संवेदन-शीलता तथा वही विचक्षण मर्मज्ञता पाते हैं। इन सब कहानियों में शरत्-चंद्र ने कठोर वास्तविकता से ताड़ित जिस कमनीय आदर्श के पावन आलोक की करुण-किरणों का विकीरण किया है उस का जन-समाज में सहजप्रिय तथा आदरणीय बन जाना कोई साधारण बात नहीं है।

अंग्रेजी में जिसे 'रियलिस्टिक आर्ट' कहते हैं शरत्चंद्र ने उस के महत्व को स्वीकार किया है। पर उसी को कला का चरम रूप नहीं माना है। जीवन की कठोर वास्तविकता की अवज्ञा उन्हों ने कभी नहीं की है और स्वाभाविकता के वह सदा कट्टर अनुयायी रहे हैं, पर "कला केवल कला के लिए है", इस गहन तत्वयुक्त नीति के बहु-प्रचलित विकृत अर्थ का अनुसरण उन्हों ने कभी नहीं किया है। उन्हों ने पूर्वोक्त रचनाओं में वास्तविकता की नींव पर सहज स्वाभाविक और साथ ही अज्ञात रूप से जिन कोमल-कमनीय तथा स्निग्ध-मधुर आदर्शों की स्थापना की है वे चिर-कल्याणोन्मुख शाश्वत मानव-मन को अदृश्य चुंबक-शक्ति से बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। शरत्चंद्र की पूर्वोल्लिखित कहानियों के नायक-नायिकाओं में आत्म-विरोधी प्रवृत्तियों का द्वंद्व अत्यंत उत्कट रूप से चलता है और वे अपने मन के उलटे-सीधे चक्रों के जटिल जाल में बड़ी बुरी तरह जकड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं। तथापि उन सब की द्वंद्वात्मक जटिलता के भीतर तरल स्नेह की एक सहज सरलता परिपूर्ण सामंजस्य के साथ विराजमान रहती है। उदाहरण के लिए 'रामेर सुमति' के राम में बाहर से अत्यंत दुष्ट-प्रकृति और उजड्ड स्वभाव दिखाई देने पर भी उस के अंतस्तल में निष्कलुष स्नेह की ऐसी अंतः-सलिलधारा छिपी हुई है जिसे या तो नारायणी अपनी सहज सहृदयता की अंतर्प्रेरणा से देख सकती है या स्वयं कहानीकार अपनी मार्मिक अनुभूति से। 'बिंदुर छेले' के नायक-नायिकाओं के बीच इन्हीं आत्म-विरोधी प्रवृत्तियों के पारस्परिक संघर्ष से वैमनस्य की पंकिलता मथित होते रहने पर भी उन के अंतर्प्रदेश में छिपे हुए पुण्य-प्रेम की पावन-धारा उस पंकिलता को क्षालित कर देती है। 'मेजदीदी' (मँझली बहन) में पितृ-मातृ-हीन मरभुखा लड़का केष्टो जब अनाथावस्था में अपनी सगी बहन के पास जाने पर बहन द्वारा अत्यंत कटु शब्दों में विताड़ित किया जाता है तो बहन की देवरानी का सहृदय स्नेह पा कर, उसे मातृस्थानीया मान कर, 'मँझली दीदी' कह कर पुकारने लगता है। मँझली दीदी इस अनाथ बालक को सच्चे हृदय से प्यार करने पर भी अपने पति, जेठ और जेठानी (केष्टो की सगी बहन) के निरंतर विरोध से उस के प्रति अवज्ञा का भाव दिखाने लगती है और केष्टो को अपने यहां आने से मना कर देती है। पर जब देखती है कि उस निरीह बालक के प्रति संसार और समाज का अत्याचार बढ़ता चला जाता है तो वह रह नहीं सकती और अंत में सारे परिवार के प्रति विद्रोह घोषित कर के केष्टो को साथ ले कर अपने मायके चले जाने को तैयार होती है। उस का दृढ़ निश्चय देख कर पति गिड़गिड़ा कर उस से क्षमा-याचना कर के दोनों को अपने घर वापस ले जाता है। 'बड़ दिदि' में सांसारिक व्यवहार से निपट अनभिज्ञ, अन्यमनस्क स्वभाव, छल-कपट-रहित एक ग्रेजुएट जंतु का एक युवती विधवा के प्रति विचित्र रहस्यमय स्नेह दिखाया गया है। विधवा माधवी पर्दे की आड़ में रह कर इस जंतु को (जो उस की आठ-नौ साल की बहन को पढ़ाया करता है) एक नादान शिशु की तरह मान कर उस के प्रति स्नेह का वही भाव रखती है जो अपनी छोटी बहन के प्रति। पर एक बार जब वह जंतु सामाजिक आचार-विचार के प्रति अपनी निरी अज्ञानता के कारण पर्दे की कुछ परवा न कर भीतर जा कर 'बड़ी बहन!' कह कर माधवी को पुकारता है तो माधवी संकुचित और त्रस्त हो कर कड़े शब्दों में अपनी छोटी बहन से कहती है कि अपने मास्टर को बाहर ले जाये। इस के बाद वह 'जंतु' उस घर को छोड़ कर किस प्रकार कलकत्ते की सड़कों में भट-

११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कता है और गाड़ी से दब कर अस्पताल में किस प्रकार 'बड़ी बहन !' 'बड़ी बहन !' कह कर विकारग्रस्त अवस्था में कराहता है और माधवी के मन में उस के प्रति कैसी सकरुण और सुकुमार समवेदना उमड़ पड़ती है और अंत में किस प्रकार अत्यंत मार्मिक परिस्थिति में दोनों का पुनर्मिलन होता है, इन सब घटनाओं का वर्णन जिस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा सहृदय संवेदन के साथ लेखक ने किया है वह वर्णनातीत है। 'वैकुंठेर उइल' में दो भाइयों के विचित्र मनोभावों का चित्रण करते हुए दिखाया गया है कि बड़े भाई के बाहर से अत्यंत रुक्ष-प्रकृति, कठोर-स्वभाव तथा लंठ मालूम पड़ने पर भी भीतर ही भीतर विह्वल भावोद्वेग से उस का हृदय सदा तरंगित रहता है; बाहर से वह अत्यंत स्वार्थी, और अपने छोटे भाई के प्रति अत्यंत अत्याचार-परायण मालूम पड़ने पर भी जी-जान से उसे चाहता है और उस के लिए सर्वस्व त्याग करने के लिए तत्पर रहता है। 'निष्कृति' में दिखाया गया है कि एक सम्मिलित परिवार में सब भाई कमाते हैं, पर सब से छोटा भाई निकम्मा है। मँझले भाई के सिखाने से ज्येष्ठ भ्राता इस निकम्मे भाई को सब अधिकारों से वंचित करने के उद्देश्य से घर जाता है, पर अपनी सहज अंतःकरुणा तथा स्वाभाविक स्नेहभाव के कारण अपनी अज्ञात चेतना की प्रेरणा से उस को सब से अधिक उपकृत कर आता है। इसी ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी, निकम्मे भाई की पत्नी को सब समय तिरस्कृत करती रहती है पर उस का अंतर-चेतन उस पर सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार रहता है।

मैं ने शरत्चंद्र से एक बार चेखोव की कला का विश्लेषण करते हुए कहा था कि ऐसा सच्चा कलाकार मैं ने अपने जीवन में कोई नहीं पाया। शरत्चंद्र ने मेरी बात का पूर्ण समर्थन किया, पर साथ ही कहा—"भारतीय सत्यता का आदर्श कुछ दूसरा ही है। निरर्थक सत्य को हमारे यहां कभी विशेष महत्व नहीं दिया गया। हमारे यहां कल्याण और मंगल की भावना को सर्वदा उच्च स्थान दिया गया है, इस लिए जिस सत्य की पृष्ठभूमि में यह भावना न हो उस के प्रति मेरे मन में कभी आदर का भाव नहीं रहा है। मैं ने कला को कभी क्रीड़ा-कौतुक के रूप में नहीं देखा है। मैं उसे मनुष्य के जीवन की चरम साधना के रूप में मानता आया हूं।"

पूर्व-वर्णित रचनाओं द्वारा शरत्चंद्र साहित्य-क्षेत्र में यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे, संदेह नहीं। पर जिन रचनाओं द्वारा उन का जयघोष दुन्दुभि-निनाद के साथ देश के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रतिध्वनित हो उठा वे बाद में प्रकाशित हुई थीं। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाएँ हैं—'देवदास', 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकांत'। इन रचनाओं में शरत्‌चंद्र ने अपनी प्रदीप्त प्रतिभा के ज्वलंत आलोक से सामाजिक विधि-निषेधों से विजड़ित वैयक्तिक आत्मा के भीतर स्वतंत्रता तथा विद्रोह की वह आग भड़का दी जिस की लपटें दावाग्नि की तरह थोड़े ही समय में सर्वत्र फैल गईं। समाज के कुटिल चक्र के प्रति असंतोष तथा आत्म-स्वातंत्र्य की आकांक्षा का अस्पष्ट भाव समाज के प्रत्येक वैयक्तिक प्राणी के भीतर वर्तमान था, शरत्‌चंद्र ने अपनी उद्दाम आवेगमयी, अप्रतिहत गतिमयी, मर्म-प्रवेशिनी प्राणशक्ति की विस्फूर्जना से उस भाव को वैप्लविक रूप से उद्वेलित कर दिया। समाज के बद्ध वातावरण के विषमय आक्रोश द्वारा पीड़ित प्रत्येक आत्मा उन्मुक्त विचार-धारा के इस परिप्लावित तरंग-प्रवाह में बह कर अपने को निर्मुक्त और निर्बंध समझ कर तरंगायमान हो उठी।

'देवदास' ने जन-साधारण में जितना आदर पाया है, कला-पारखियों की विवेचना में भी वह उसी परिमाण में खरा उतरा है। 'नाविक के तीरों' की तरह गंभीर घाव करने वाली इस विशिष्ट रचना का जो स्थायी प्रभाव पाठकों के मन पर पड़ता है, उस के अंतर्गत कारण का अन्वेषण करने पर जब हम उस के नायक और नायिका के मूल चरित्रों का विश्लेषण करते हैं तो पार्वती के चरित्र के गंभीर जलधि के ऊपर देवदास का चरित्र एक वेगशील तरंग की तरह द्रुतगति से प्रवाहमान मालूम पड़ता है। किसी दार्शनिक ने कहा है कि नारी-प्रकृति सदा केंद्रानुग (सेंट्रीपेटल) चिर-स्थिर तथा चिर-संरक्षणशील (कन्सरवेटिव) होती है और पुरुष-प्रकृति सदा केंद्रातिग (सेंट्रीफ्यूगल) चिर-चंचल तथा चिर-परिवर्तनशील होती है। शरत्‌चंद्र की तीनों श्रेष्ठ रचनाओं ('देवदास', 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकांत') के नायक-नायिकाओं के चरित्र-चित्रण में हम नारी-प्रकृति तथा पुरुष-प्रकृति की इन दोनों विशेषताओं को चरम रूप में प्रस्फुटित पाते हैं। यदि शरत्‌चंद्र के स्त्री-चरित्रों में वह अतलव्यापी गांभीर्य, वह चिर-संरक्षणशील स्थैर्य, वह अनंत-कालीन मूक, मौन, अटल, धैर्य न होता जैसा कि हम उन में पाते हैं, तो उन के सब पुरुष-चरित्र हवाई बुद्‌बुदों की तरह अथवा वात-विताड़ित मेघ-खंडों की तरह छिन्नाधार हो कर शून्य में विलीन होते हुए दिखाई देते। देवदास एक पतित, दुर्बल और क्षीण इच्छाशक्ति-संपन्न सहृदय प्राणी है; शरत् के प्रायः सभी प्रधान-चरित्रों के संबंध में यही बात कही जा सकती है। इस में संदेह नहीं कि उस की आत्मा के अनेक वाह्य स्तरों को लंघित कर के उस के अंतरतम प्रदेश में यदि कोई प्रवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सके तो वहाँ अवश्य ही महत् प्रेम का एक अव्यक्त बीज पाया जायगा, और यही उस के भ्रष्ट चरित्र का उन्नायक तत्त्व है, जिसे अंग्रेज़ी में 'रिडीमिंग फ़ीचर' कहते हैं। इस से अधिक उस में हम कुछ नहीं पाते। पर पार्वती के संबंध में यह बात नहीं कही जा सकती। उस के चरित्र-विश्लेषण से ऐसा मालूम होने लगता है जैसे वह जन्म से ही जीवन की गहरी अनुभूतियों से चिर-परिचित हो कर आई हो और अपने अतल-व्यापी प्रेम की सुदृढ़ शक्ति के बल से अपने सारे जीवन में मृत्यु के साथ एक सहेली की तरह क्रीड़ा करती चली गई हो। उस का स्वभाव आवेग-प्रवण और भाव-विभोर अवश्य है, पर वह आवेग उस की आत्मा के निगूढ़ स्थैर्य और अनंत धैर्य द्वारा सुसंयत है। यही कारण है कि देवदास पार्वती के महत् प्रेम की मर्मव्यथा का वृहत् भार न सह सकने के कारण उच्छृंखल हो कर विलीन हो गया, और पार्वती देवदास के प्रेम की स्वर्गीय पीड़ा को वज्रमणि की तरह अपने अंतस्तल में धारण करके अटल धैर्य के साथ अपने वृद्ध स्वामी तथा सौतेले लड़के-लड़कियों की सेवा द्वारा अपना सांसारिक कर्तव्य पूर्ण-रूप से निबाहती चली गई।

पहले ही कहा जा चुका है कि शरत् के पुरुष-चरित्र अत्यंत दुर्बल इच्छाशक्ति-संपन्न उच्छृंखल प्राणी हैं, जो गेटे के शब्दों में ऐसे जीव हैं "जिन के हृदयों में भावों का तूफ़ान मचा रहता है, पर जिन की अस्थियों में सारतत्त्व नाम को भी नहीं पाया जाता।" शरत् के 'चरित्र-हीन' का नायक सतीश भी देवदास की ही तरह इसी प्रकार का दुर्बल प्राणी है। गेटे के 'वेर्टेर' की आलोचना करते हुए फ्रेंच आलोचक गिज़ो ने कहा था कि "वर्तमान युग के पुरुष की आकांक्षा अत्यंत प्रबल होती है, पर उस की इच्छाशक्ति अत्यंत दुर्बल होती है।" देवदास और सतीश के संबंध में यह बात पूरी तरह से लागू है। सतीश के जीवन के असंतोष का भी यही कारण है कि वह अपने भीतर भावों का तूफ़ान मचा हुआ पाता है और उस के भीतर हृदयहीन समाज के मृत्यु-कठिन बंधनों को न मान कर चलने की एक महत् आकांक्षा भी वर्तमान रहती है, इसी कारण वह कुलत्यागिनी तथापि सदाचरणशीला सावित्री को आंतरिक प्रेम से वरण करने के लिए अधीर हो उठता है। पर सावित्री जानती है कि सतीश का उस के प्रति सहृदय प्रेम होने पर भी उस में दैहिक आकांक्षा के भाव की प्रधानता है, इस लिए यद्यपि वह उसे अपने प्राणों से भी अधिक चाहती है, तथापि उस के प्रेम को बड़े ढंग से तिरस्कृत करती चली जाती है। फल यह होता है कि सतीश सावित्री की अवज्ञा का भार न सह सकने के कारण,शराबखोरी में अधिकाधिक डूबता चला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। सावित्री नाना घटना-चक्रों द्वारा विताड़ित होने पर भी सतीश को नहीं भूलती और उस की परम-मंगल-कामना के भाव से प्रेरित हो कर अंत में उस के दुर्बल मन में यह सबल भाव भरने में समर्थ होती है कि त्याग के भाव में ही उन दोनों के प्रेम की महत्ता है, न कि वैवाहिक तथा शारीरिक मिलन में। इस प्रकार 'चरित्रहीन' में अनंत प्रेमपूर्ण तथा चिर-विरागिनी सावित्री के महत् चरित्र के अंतर्गत महान् त्याग, असीम करुणा तथा अपरिमित आत्म-बल के भाव अत्यंत सुंदर रूप से अंकित पाए जाते हैं।

शरत्‌चंद्र पर सब से बड़ा कलंक यह लगाया जाता है कि उन्हों ने अपनी रचनाओं में असती नारियों तथा वेश्याओं के चरित्र की महत्ता प्रदर्शित की है। शरत् की सब से बड़ी विशेषता इस बात पर रही है कि किसी भी स्त्री अथवा पुरुष के व्यक्तित्व का विचार उन्हों ने उस के वाह्य आचरण से नहीं किया है। सब वाह्याचारों के जटिल जाल के भीतर मनुष्य के अंतरतम प्रदेश में सहृदय वेदना का जो अज्ञात स्रोत बहता है उसे उन्मुक्त करके शरत् ने पीड़ित मानवता के आत्मगौरव की घोषणा की है। पाप को उन्हों ने कभी प्रश्रय नहीं दिया है, पर पापी के प्रति उन के हृदय में सदा करुणा का अजस्र स्रोत बहता रहा है।

मैं ने एक बार शरत्‌चंद्र से प्रश्न किया था—"भारतीय नारी के सतीधर्म के आदर्श के संबंध में आप के क्या विचार हैं?"

उन्हों ने जो उत्तर दिया था उस का भाव इस प्रकार है—"मैं मानव-धर्म को सती-धर्म के बहुत ऊपर स्थान देता हूँ। सतीत्व और नारीत्व, ये दोनों आदर्श समान नहीं हैं। नारी-हृदय की निखिल-कल्याणकारी करुणा, उस की मातृवेदना उस के सतीत्व से बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं। बहुत सी स्त्रियां ऐसी देखी गई हैं जिन का किसी दूसरे पुरुष से कभी किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक संबंध नहीं रहा है, तथापि उन के स्वभाव में अत्यंत नीचता, घोर संकीर्णता, परद्रोह तथा चौरवृत्ति पाई गई है। इस के विपरीत ऐसी पतिताओं से मेरा परिचय रहा है जिन के भीतर मैं ने मातृवेदना और नारी-हृदय की यथार्थ करुणा का अथाह सागर उमड़ा हुआ पाया है।"

मैं ने फिर प्रश्न किया—"यदि यही बात है तो आप ने 'श्रीकांत' में अन्नदा दीदी के सतीत्व की महिमा ऐसे ज़ोरदार शब्दों में क्यों घोषित की है कि उस की प्रदीप्त ज्योति के आगे आप के अन्यान्य नारी-चरित्र म्लान पड़ गए हैं?"

इस बात पर शरत्‌चंद्र मंद-मंद मुसकराए और बोले—"तुम्हारी यह बात मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता हूँ। अन्नदा दीदी के प्रति वास्तव में मेरी भी आंतरिक श्रद्धा है। मेरे जन्मगत संस्कार आखिर भारतीय ही हैं। फिर भी तुम्हें मैं यह बात बता देना चाहता हूँ कि उस के एकनिष्ठ पातिव्रत धर्म ने मेरी श्रद्धा उतनी नहीं उभाड़ी है जितनी उस की प्रेम-प्लावित आत्मा के मुक्त प्रवाह ने।"

शरत् की रचनाओं में वास्तविक जीवन के संबंध में उन की गहन अनुभूति के प्रमाण घनीभूत हो उठे हैं। स्पष्ट ही पता चलता है कि मानव-समाज, तथा मानव-स्वभाव के नीच, संकीर्ण जघन्य तथा बीभत्स रूप से वह भली-भाँति परिचित थे। तथापि उन्हों ने इस पहलू को अधिक महत्व न दे कर सहस्रों बुराइयों के भीतर दबी हुई महत् प्रवृत्तियों को मानव-मन की गहनतम गुहा-कंदराओं से बाहर निकाल कर दलित मानवता को अमर महिमा का गौरव-मुकुट पहनाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंझन-कृत 'मधुमालती'

[लेखक--श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

हिंदी साहित्य के इतिहास के भक्तिकाल की निर्गुणधारा की एक शाखा प्रेम-प्रधान है, जिस के कवियों ने केवल आख्यानक-काव्यों का निर्माण किया है। ये प्रेम-गाथाएं प्राय: सभी में कुछ विभिन्नता लिए समान हैं और किसी-किसी ने इतिहासों से नाम ले कर इन पर ऐतिहासिक पुट भी दे दिया है। इन सब में उसी प्रेमतत्व का वर्णन है, जो ईश्वर को मिलाने वाला है तथा सांसारिक वातावरण में उसी का आभास दिया जाता है। ये काव्य कवि की प्रतिभा तथा योग्यता के अनुसार न्यूनाधिक विशद, सुंदर तथा व्यापक हुए हैं। हिंदू-मुस्लिम-संघर्ष आरंभ होने के कई शताब्दी बाद ऐसे ग्रंथ रचे गए और यह परंपरा बहुत दिनों तक चलती रही। इस प्रकार के कवियों में, जो विशेषत: साधु-फ़कीर होते थे, स्पष्टत: दो संप्रदाय हो गए—एक हिंदू तथा दूसरा मुसल्मान। साहित्य की दृष्टि से दूसरा ही सफल हुआ और उन के काव्य विशेष महत्व के हुए। कारण यह हुआ कि हिंदू सुकवि भक्तगण विशेषत: सगुण-धारा की ओर झुके और निर्गुण-धारा वालों ने भी दूसरी अर्थात् ज्ञान-प्रधान शाखा को अधिक अपनाया। मुसल्मान कविगण ने निर्गुण-धारा की इस शाखा को अपने मनोनुकूल अधिक पाया और वे इसी ओर झुके। सूफ़ी-मत की इसी प्रेमतत्व की ओर रुझान थी और फ़ारसी की मसनवी की प्रथा को ग्रहण कर ये आख्यानक-काव्य बनाए जाने लगे। इन कवियों में धार्मिक उत्साह भी भरा हुआ था और उस के प्रचारार्थ देश की भाषा को अपनाना ही उन्हें युक्ति-संगत जान पड़ा। मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं कि प्रेम-तत्व या प्रेम-मार्ग जिस किसी भाषा में हो सभी उसे सराहते हैं—

तुरकी अरबी हिंदुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि॥

इस शाखा के प्राचीनतम कवि कुतबन हैं, जिन का काव्य सन् ९०९ हि० (सं० १५५९–६० वि०) में शेरशाह के पिता हुसैन शाह के आश्रय में समाप्त हुआ था। इन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद मलिक मुहम्मद जायसी का समय आता है, जिन्हों ने प्रसिद्ध 'पद्मावत' को सन् ९४७ हि० (सं० १५९६–७ वि०) में आरंभ किया था। उस समय "शेरशाह दिल्ली सुलतानू। चारिहुं ओर तपै जस भानू" था। सन् का दूसरा पाठ ९२७ हि० भी मिलता है पर शेरशाह केवल सन् १५४०–५ (सं० १५९७–१६०२ वि०) तक दिल्ली का बादशाह था, इस लिए यह पाठ ठीक नहीं है। जायसी ने 'पद्मावत'[१] में कुछ प्रेमियों का हाल उस समय लिखा है, जब शिव-मंदिर में रत्नसेन के मूर्च्छित हो जाने पर पद्मिनी आ कर लौट गई और रत्नसेन के जागने पर सूए द्वारा संदेश भेजने पर उस ने एक पत्र उत्तर में लिखा था। वह लिखती है कि —

हौं जो गई सिव-मंडप भोरी। तहँवाँ कस न गाँठि तैं जोरी।
....
अब जौं सूर होइ चढ़ै अकासा। जौं जिउ देइ त आवै पासा।।
बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला। तू जोगी कित आहि अकेला।।
विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा।।
मधूपाछ मुग्धावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी।।
राजकुँवर कंचन पुर गएऊ। मिरगावति कहँ जोगी भएऊ।।
साध कुँवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह बियोगू।।
प्रेमावति कहँ सुरसर साधा। ऊषा लगि अनिरुध बर बाँधा।।
हौं रानी पदमावती, सात सरग पर बास।
हाथ चढौं मैं तेहि के, प्रथम करै अपनास।।
....
ऐहुबेधि अरजुन होइ, जीतु दुरपदी ब्याहु।

पद्मावती के पत्र में इन सब प्रेमियों का उल्लेख इसी कारण हुआ है कि इन सब ने बड़े कष्ट उठा कर तथा शौर्य और वीरता दिखला कर अपनी प्रेयसियों को प्राप्त किया था और उस ने रत्नसेन को उत्साहित करने के लिए ही यह सब लिखा था। आचार्यवर पंडित

[१] काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'जायसी-ग्रंथावली', प्रथम संस्करण, पृ० १०७–८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं[1] कि "इन पद्यों में जायसी के पहले के चार काव्यों का उल्लेख है—'मुग्धावती', 'मृगावती,' 'मधुमालती' और 'प्रेमावती'। इन में से 'मृगावती' और 'मधुमालती' का पता चल गया है, शेष दो अभी नहीं मिले हैं। जिस क्रम से ये नाम आए हैं वह यदि रचनाकाल के क्रम के अनुसार माना जाय तो 'मधुमालती' की रचना कुतबन की 'मृगावती' के पीछे की ठहरती है"। पर आप ने उसी वज़न पर 'सपनावती' पर कुछ राय नहीं दी है। 'जायसी-ग्रंथावली' का 'सुरसर' इतिहास में 'सुरपुर' हो गया है, इसी से स्यात् ऐसा हो गया है। जायसी ने उक्त सब ग्रंथों को देखा था या उन सब के विषय में निश्चयपूर्वक सुना था, ऐसा कहना कहां तक ठीक माना जाय यह नहीं कहा जा सकता, पर यह अवश्य निश्चय है कि वह इन आख्यानों को जानते थे। वे काव्य-रूप में जायसी के पहले या उन के समय मौजूद थे, इस का निश्चय केवल उक्त उद्धरण से नहीं हो सकता। जायसी के पूर्ववर्ती कवि कुतबन की 'मृगावती' का उल्लेख हो चुका है। 'मधुमालती' की एक अपूर्ण प्रति फ़ारसी लिपि में मिली है, अब उसी पर विचार किया जायगा।

'मधुमालती' की प्राप्त प्रति का आरंभ इस प्रकार है—

यह खोती कुल नागिन कारी। त्रिभुवन मोहिनि वृद्ध कुँआरी॥
प्रथमहिं जन्म जहाँ लहि आई। ते सब मोह भरी की खाई॥
यह कुल बारी बहुतन्ह चाही। बरबर किए न काहूँ ब्याही॥
इन पापिन संसार भुरावा। लोभ-बकूची लाभ न पावा॥
अस चंचल जन चाहै कोई। लाभ मोल स्यों जाव न कोई॥

कवि ने पाँच-पाँच चौपाई पर एक-एक दोहे दिए हैं, और इस प्रकार तीन दोहों तक माया के विषय में लिख कर कथा आरंभ कर देते हैं।

कथा एक चित········। सुनहु कान दै कहौं बखानी॥
अमी रसिक रस कहे जो कोई। गुन औ दोस बिचारहि सोई॥

इस प्रति का अंत यों है—

कैसहिं पलक ना लागहिं, सहिर सिखान सरीर।
बिन जिव परा धरनि महँ लोटै, जान न जा कछु पीर॥

---

[1] **नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ० १०१**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनतहि गइ मधुमालति धाई । बीर बीर कै रोवत आई ।।
सिर उँचाय कै किय तस कोरें । बिधना स्यों बिनवै कर जोरैं ।।
बहु विलाप कै रोवै रानी । पीवै वारि वारि सिर पानी ।।

इस काव्य की कहानी यह है कि कनेसर के राजा सूरजभान तथा कमला के पुत्र मनोहर को कुछ अप्सराएं सोते हुए उठा कर महारस नगर के राजा विक्रमराय तथा रूप-मंजरी की पुत्री मधुमालती की चित्रसारी में ले जा कर उस के पास सुला देती हैं। जागने पर दोनों में मिलाप होता है और पुनः सो जाने पर वे उसे उस के घर पहुँचा देती हैं। दोनों प्रेम-व्यथा पाते हैं। मनोहर खोज में निकलता है। जहाज़ के टूटने से वह एक द्वीप में जा लगता है और चित्तबिसरामपुर के राजा चित्रसेन तथा मधुरा की पुत्री प्रेमा का, उस राक्षस को, जो उसे वहां उठा ले गया था, मार कर उद्धार करता है। उसी के साथ वह उस के नगर में आता है और जब प्रेमा का पिता मनोहर से उस का विवाह करना चाहता है तब वह अस्वीकार कर देती है। यहीं मधुमालती अपनी माता के साथ आती है और मनोहर से मिलन होता है। मधुमालती की माता इस मिलाप से क्रुद्ध हो मंत्रबल से पुत्री को पक्षी बना देती है,जो उड़ते हुए पीपानेर मानगढ़ के राजकुमार ताराचंद द्वारा पकड़ी जाती है। मधु-मालती से कुलवृत्त जान कर वह उसे ले कर महारस नगर आता है। वह पुनः उसी प्रकार अपना रूप पाती है। ताराचंद मधुमालती से अपने विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है तब योगी मनोहर बुलाया जाता है और उस से विवाह होता है। एक दिन प्रेमा को झूलते हुए देख कर ताराचंद बेसुध हो जाता है। यहां तक पहुँच कर प्रति खंडित हो जाती है पर कथा-प्रवाह से ज्ञात होता है कि अंत में दोनों का विवाह हो गया होगा।

इस प्रति के खंडित होने तथा पुष्पिका के अभाव में इस के रचयिता तथा रचना-काल का पता नहीं चलता। केवल बीच में एक जगह एक दोहे में रचयिता का नाम आया है—

बाँकी अधर सबहि की, अकुतानी बर नारि।
आगे मधुकर खेलहीं, 'मंझन' कहै बिचारि ।।

इस कवि की कोई अन्य रचना भी नहीं मिलती और न इस रचना ही से कोई सहायता मिलती है कि इस का रचना-काल या कवि का कुछ पता लगे। केवल जायसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उक्त उद्धरण के निर्बल सूत्र पर उसे कुतबन का परवर्ती तथा जायसी का पूर्ववर्ती मान लेने का उचटता-सा प्रयास मात्र किया गया है।

जौनपुर-निवासी जैन कवि बनारसीदास ने अपने आत्मचरित स्वरचित 'अर्द्ध-कथा' में सं० १६९८ तक का अपना जीवनवृत्त किया है। इस का जन्म सं० १६४३ में हुआ था। उक्त पुस्तक के पृ० ३० पर वह लिखता है कि—

तब घर में बैठे रहे, नाहिन हाट बजार।
मधुमालति मृगावती, पोथी दोय उचार।।

यह घटना सं० १६६० के लगभग की है, जब वह व्यापार में घाटा उठा कर घर बैठ रहे थे। इस उद्धरण से 'मधुमालती' तथा 'मृगावती' नामक दो पुस्तकों का उस समय तक कवि-समाज में प्रचार हो जाना निश्चित हो जाता है तथा वे उस के पहले की रचनाएं थीं, यह भी निश्चयपूर्वक माना जा सकता है।[1]

कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल हाल में संख्या ७४५ पर खानखाना के पुत्र दाराब खां का एक चित्र प्रदर्शित है, जिस के नीचे नागरी लिपि में एक कवित्त दिया हुआ है और दोनों ओर के किनारों पर फ़ारसी में कुछ शैर लिखे हुए हैं। कवित्त इस प्रकार है—

दर्प दरबार आयो औचक ही हरबर
अंबर अनीक बर बरबर कर कै।
तरपि तुरकमान साहसी दराब खान
कीनो कतलान घमसान उग्र परि कै।।
'मंझन' सुकवि कहै यहै चाह पाई जहां
जीत को नगारो बज्यौ बीतत समर कै।
जौं लौं हिमांचल तौ लौं डमरू बजावै संभु
तौलौं डाक चौकी डांकि मार्‍यौ हर हर कै।।

इस कवित्त में सुकवि 'मंझन' अपने आश्रयदाता तुर्कमान दाराब खां के अंबर की

---

[1] **'हिंदुस्तानी', सन् १९३५, पृ० ३४५–७३**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना पर विजय पाने का वर्णन करता है। सम्राट् अकबर का अभिभावक बैराम खां तुर्कमान था। उसी के पुत्र नवाब अब्दुर्रहीम खां खानखानां का द्वितीय पुत्र दाराब खां था। जहाँगीर के राज्यकाल में शाहजहां के दक्षिण जाने पर जब मलिक अंबर ने संधि कर ली, तब दाराब खां बरार तथा अहमदनगर का सूबेदार नियत हुआ था। सन् १६२० ई० में अंबर ने संधि तोड़ कर चढ़ाई की तब दाराब ख़ां ने उसे कई युद्धों में परास्त किया था और सन् १६२१ ई० में शाहजहां के द्वितीय बार दक्षिण जाने पर पुनः संधि हुई थी। इस के अनंतर शाहजहां ने विद्रोह किया और जब वह बंगाल पहुँचा तब दाराब ख़ां को वहां का प्रांताध्यक्ष नियत किया। शाहजहां के पर्वेज़ तथा महावत ख़ां से परास्त हो कर लौट आने पर सन् १६२५ ई० में दाराब ख़ां जहांगीर की आज्ञा से विद्रोह पक्ष लेने के कारण मारा गया।

इस कवित्त से 'मंझन' के एक आश्रयदाता दाराब ख़ां का पता लगता है और यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सन् १६२१ ई० (सं० १६७८ वि०) में जीवित थे। यदि यह इस समय वृद्ध भी माने जायँ तब भी इन का रचना-काल विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का पूर्वांश हो सकता है। 'मंझन' हिंदू थे अतः उन्हों ने मुसलमानी प्रथानुसार अपने काव्य के आरंभ में अपने समय के सम्राट् का उल्लेख नहीं किया है और न ग्रंथ-निर्माण का समय दिया है। 'मधुमालती' के मंगलाचरण से यह निर्गुण निराकार के मानने वाले ज्ञात होते हैं। इस प्रकार 'मधुमालती' का रचनाकाल सं० १६५० वि० के लगभग आता है और इन्हें जायसी का पूववर्ती मानना भ्रामक है और उस के लिए कोई दृढ़ आधार भी नहीं है। यह संवत् मानने में बनारसी-दास का 'मधुमालती' का उल्लेख पोषक ही होता है, अतः यही रचनाकाल ठीक जान पड़ता है। अब तक किसी अन्य 'मंझन' का पता भी नहीं चला है, इस लिए उक्त निष्कर्ष ही समीचीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुट प्रसंग

हिंदुस्तानी

[लेखक--डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्०, (आक्सन)]

'हिंदुस्तानी' शब्द का व्यवहार उस भाषा के लिए जो हिंदुस्तान के रहने वाले मध्य-काल में बोलते थे और जिस के द्वारा आपस में विचारों का परिवर्तन करते थे, कब से आरंभ हुआ, अभी तक निश्चित ढंग से मालूम नहीं। आज कल कुछ लोगों का खयाल है कि 'हिंदुस्तानी' 'उर्दू' का दूसरा नाम है, लेकिन यह ठीक नहीं जान पड़ता। उर्दू और हिंदी दोनों ही के अर्थ में 'हिंदुस्तानी' व्यवहार में आता था। 'हिंदुस्तानी' से उस भाषा का तात्पर्य था जो अरबी और फ़ारसी के अतिरिक्त व्यवहार में आती थी और जिसे हिंदू और मुसल्मान दोनों समझते थे।

इस प्रश्न पर यूरोपीयों के पत्र-व्यवहार कुछ प्रकाश डालते हैं। उन में सब से पहले पुर्तगीज़ हिंदुस्तान में आए और उन्हों ने पश्चिमी तट पर कोठियां बनाईं तथा भूमि पर अधिकार प्राप्त किया। गोआ उन का केंद्र था, जहां पुर्तगीज़ गवर्नर रहता था। हुकूमत के क्रम के साथ धार्मिक और प्रचार-संबंधी कार्यवाही भी आरंभ हुई और रोमन कैथलिक पादरी और 'सोसाइटी अव् जीसस' के सदस्य भी आने लगे। सोलहवीं सदी में अकबर ने सत्य की खोज में भिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को निमंत्रण दिया और उस के दरबार में ईसाई पादरी और प्रचारक गोआ से आ कर उपस्थित हुए। उन की चिट्ठियां और लेख पुर्तगाल के पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं। हिंदुस्तान के इतिहास के संबंध की उन से बहुत सी आवश्यक बातें ज्ञात होती हैं। अतएव 'हिंदुस्तानी' भाषा की चर्चा अक्सर पत्रों में की गई है। इन के अतिरिक्त यूरोप के देशों से हिंदुस्तान में यात्री, व्यापारी, पर्यटक आदि इसी समय में आने लगे थे और उन्हों ने भी यहां की बातों की चर्चा की है।

उन के वर्णनों से जो उद्धरण नीचे दिए जाते हैं वह मनोरंजन से शून्य नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १५८२ ई० में पादरी एक्वा वीवा ने एक पत्र पादरी रुई विन्सेंट के नाम भेजा था। रुई विन्सेंट गोआ में रहता था, और उस सूबे का प्रधान (प्राविंशल) था। इस पत्र में एक्वा वीवा ने यह प्रस्ताव किया कि गोआ में एक मदरसा स्थापित होना चाहिए जिस में मुसलमानों के लिए फ़ारसी और अन्य धर्मों के अनुयायियों के लिए हिंदुस्तानी की शिक्षा दी जाय। स्पष्ट है कि 'हिंदुस्तानी' से तात्पर्य उस भाषा से है जो हिंदू बोलते थे। एक्वा वीवा के विषय में यह भी वर्णन है कि जब वह अपने दुभाषिए डोमिंगो पीरीज़ का एक हिंदुस्तानी औरत के साथ निकाह पढ़ा रहा था तो उसे फ़ारसी भाषा का व्यवहार करना पड़ा और अकबर बादशाह जो वहां मौजूद था फ़ारसी के वाक्यों का 'हिंदुस्तानी' में अनुवाद करता जाता था।

सन् १५९८ ई० में जेरोम ज़ेवियर ने लाहौर से एक पत्र 'सोसाइटी अव् जीसस' के प्रधान (जनरल) के नाम भेजा जिस में यह वाक्य मिलता है—"कुछ नौजवानों ने फ़ारसी भाषा में जिस में कहीं-कहीं हिंदुस्तानी कहावतें खपाई गई हैं एक प्रबंध प्रभु ईसा के जन्म के संबंध में तैयार किया है।"

सन् १६०४ ई० में इसी जेरोम ने आगरे से एक पत्र में पादरी कोर्सी के बारे में लिखा कि—"उस ने फ़ारसी भाषा सीख ली है और हिंदुस्तानी का सीखना आरंभ कर दिया है जो इस देश की भाषा है। उस की ज्ञान-पिपासा और योग्यता ऐसी है कि वह शीघ्र ही अरबी पर भी अधिकार प्राप्त कर लेगा।"

अकबर की मृत्यु के कुछ ही काल बाद पादरी ऐन्टनी बॉटेलहो जो सूबे का प्रधान था, बीजापुर के आदिलशाही सुल्तान के साथ अपनी बातचीत का वर्णन लिखता है और सुल्तान का यह प्रश्न उसी की भाषा में अंकित करता है—"सच है कि बड़ा बादशाह अकबर फिरस्ता मुआ कि नां?"

सन् १६१५ ई० के १० वीं अप्रैल के पत्र में दे कास्ट्रो लिखता है कि आगरे के पादरी ईसाइयों से हिंदुस्तानी भाषा में पापों की स्वीकृति कराते हैं।

टेरी ने सन् १६१६ ई० की घटनाओं की चर्चा करते हुए लिखा है—"टॉम कोरयाट ने इस के बाद हिंदुस्तानी पर अर्थात् जनता की भाषा पर बड़ा अधिकार प्राप्त कर लिया। एक स्त्री जो राजदूत के यहां धोबिन (लांड्रेस) थी इतनी स्वतंत्र और जीभ की पैनी थी कि सवेरे से शाम तक लोगों को झिड़कती, फटकारती और बनाती रहती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन कोरयाट ने उस की भाषा में उसे आड़े हाथों लिया और आठ बजे तक उस की ऐसी खबर ली कि बेचारी चुप हो गई और फिर एक शब्द मुँह से न निकाल सकी। टेरी इस भाषा के विषय में यह भी सूचना देता है कि यह बाँए से दाहिने तरफ़ लिखी जाती थी।

सन् १६३२ ई० में यह वाक्य मिलता है—"पादरी साइमन दे फ़िग्योरेडो हिंदुस्तानी भाषा जानता है।" यह वाक्य पादरी बेसे की उस सूची से लिया गया है जो उस ने मलाबार सूबे के पादरियों की पुस्तकों से तैयार की है।

सन् १६५० ई० में पादरी केशी सूचित करता है कि उस ने कठिन हिंदुस्तानी भाषा को सीखा है।

सन् १६७३ ई० में फ़ायर लिखता है कि—"दरबार की भाषा फ़ारसी है और जनता में जो भाषा प्रचलित है वह हिंदुस्तानी है।"

सन् १६७७ ई० में एक पत्र इंगलिस्तान से कंपनी के डायरेक्टरों ने फ़ोर्ट सेंट जार्ज भेजा था। उस में यह विज्ञप्ति अंकित है—"जो व्यक्ति हिंदुओं (जेंटू) की भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी में योग्यता दिखाएगा उसे २० पाउंड पुरस्कार दिया जायगा।"

हेजेज़ अपनी दिनचर्या में ९ मार्च सन् १६८५ की तिथि में लिखता है—"मैंने एक पुर्तगीज़ मल्लाह के साथ जो हिंदुस्तानी बोलता था अर्थात् वह भाषा जो इन टापुओं की बोली है, अभ्यास किया।"

वालेन्टीन सन् १६९७ ई० में हिंदुस्तानी भाषा (हिन्दोएस्तान्ज़ी ताल) की चर्चा करता है, और लिखता है कि हब्श (अबीसीनिया) का राजदूत इस भाषा में बातचीत करता था और टिव्यूआ के गवर्नर का मंत्री उस का मतलब समझाता था।

यही वालेन्टीन सन् १७२६ ई० में लिखता है कि—"यहां की भाषा हिंदुस्तानी अर्थात् 'मूर' है यद्यपि जो अरबी-फ़ारसी से अभिज्ञ हैं वह महामूर्ख समझे जाते हैं।"

हैमिल्टन सन् १७२७ ई० की घटनाओं के बारे में बयान करता है—"यह ईरानी और मैं अपने संबंध की बातों में हिंदुस्तानी भाषा बोल रहे थे। यह मुग़लों के विस्तृत राज्य की प्रचलित भाषा है।"

गार्सां द तासी ने आत्मचरित में बेंजामिन शूल्ज़ के हिंदुस्तानी व्याकरण (ग्रामेटिका हिंदोस्तानिका) की चर्चा की है जो सन् १७४५ ई० में तैयार हुआ था।

ऑर्मे जो अठारहवीं सदी के ब्रिटिश युद्धों और विजयों का इतिहासकार है सन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८६३ ई० में लिखता है—"पांडीचेरी के दो कौंसिली कैंप में गए। उन में से एक अच्छी तरह हिंदुस्तानी और फ़ारसी जानता है, क्यों कि मुसलमान सुल्तानों के दरबारों में यही दो भाषाएं व्यवहार में आती हैं।"

१७७८ ई० में इटली की राजधानी रोम में हिंदुस्तानी व्याकरण (ग्रामेटिका इंडोस्ताना) के प्रकाशित होने का हाल मिलता है।

ज़ाकमू के पत्रों में जो सन् १८३० ई० के लिखे हुए हैं, यह लेख मिलता है—"यह जनता की बोली हिंदुस्तानी जो यूरोप जाने पर मेरे किसी काम में न आएगी कठिन है।"

सर चार्ल्स नेपियर १२ फ़रवरी सन् १८४४ ई० में कराची से लिखते हैं—"खेद है कि गवर्नर न हिंदुस्तानी न फ़ारसी न मरहटी और न किसी और पूर्वी भाषा से परिचित है, इस लिए वह कलेक्टरों, उन के नायबों, उन अफ़सरों से जो फ़ौजी अदालतों की कार-वाइयों को लिखते हैं और अन्य फ़ौजी अमलों से अनुरोध करता है कि वह अपने पत्र अंग्रेज़ी भाषा में इस तरह लिखें कि उन में अजनबी भाषाओं के शब्द जहां तक संभव हो कम हों बजाय इस के कि वह अपने अभ्यास के अनुसार उस भाषा का व्यवहार करें जो इस तरह की हिंदुस्तानी है जिस में कहीं-कहीं अंग्रेज़ी शब्द भी आ गए हैं।"

('जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल' सन् १८९६; हाब्सन जाब्सन से उद्धृत।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदुस्तानी एकेडेमी का छठा साहित्य-सम्मेलन

हिंदुस्तानी एकेडेमी का छठा वार्षिक साहित्य-सम्मेलन शनिवार १९ तथा रविवार २० मार्च, १९३८ को विजयानगरम् हाल, म्योर कालिज भवन, इलाहाबाद में हुआ। नगर की विषम सांप्रदायिक परिस्थिति के कारण सम्मेलन में भाग लेने वाले स्थानीय तथा बाहरी सज्जनों की संख्या पर प्रभाव पड़ा, फिर भी हाल एकेडेमी के सदस्यों, संस्थाओं के प्रतिनिधियों और सम्मानित दर्शकों से भरा हुआ था।

उपस्थित सज्जनों में प्रमुख निम्न-लिखित थे—महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा; सर लियाक़त अली; पंडित इक़बालनारायण गुर्टू; पंडित कन्हैयालाल; रावराजा डाक्टर श्याम बिहारी मिश्र; अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी; डाक्टर ईश्वरी प्रसाद; प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना; मौलवी अब्दुल हक़; पंडित अमरनाथ झा; डाक्टर अब्दुस्सत्तार सिद्दीक़ी; डाक्टर बाबूराम सक्सेना; डाक्टर बनारसीप्रसाद; ठाकुर गोपालशरण सिंह; मौलवी अब्दुस्सलाम नदवी; पंडित ब्रजनारायण गुर्टू; श्री सूर्यनारायण माथुर; श्री सदायतन पांडेय; पंडित मनोहरलाल ज़ुत्शी; मौलवी अब्दुल माजिद दरयाबादी; डाक्टर बेनीप्रसाद; डाक्टर धीरेंद्र वर्मा; डाक्टर प्रसन्नकुमार आचार्य; मिस्टर रशीद अहमद सिद्दीक़ी; डाक्टर मुहम्मद हफ़ीज़ सैयद।

इस अवसर के लिए इलाहाबाद, लखनऊ, पटना, आगरा, बनारस और अलीगढ़ यूनिवर्सिटियों ने अपने प्रतिनिधि निर्वाचित किए थे और कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने सम्मेलन की सफलता के लिए संदेश भेजा था। प्रतिनिधियों की नामावली निम्न है—

इलाहाबाद—महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, एम्० ए०, डी० लिट्०, एल्-एल्० डी०; दि आनरेबुल डाक्टर हृदयनाथ कुंज़रू, डी० लिट्०

लखनऊ—मिस्टर यूसुफ़ हुसैन मोसवी, एम्० ए०; श्रीयुत दीनदयाल गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटना—श्रीयुत डाक्टर सच्चिदानंद सिनहा, डी० लिट्०

आगरा—डाक्टर ईश्वरी प्रसाद, एम्० ए०, डी० लिट्०

बनारस—मौलवी महेशप्रसाद

अलीगढ़—जनाब आल अहमद सरूर

इन के अतिरिक्त ईविंग क्रिश्चियन कालिज, इलाहाबाद; डी० ए० वी० कालिज, कानपूर; डी० ए० वी० कालिज, देहरादून; सनातनधर्म कालिज, कानपूर; क्रिश्चियन कालिज, लखनऊ; उदयप्रताप कालिज, बनारस तथा ऐंग्लो-बंगाली कालिज, इलाहाबाद ने भी अपने-अपने प्रतिनिधि सम्मेलन में भाग लेने के लिए निर्वाचित किए थे।

हिंदी-साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, तथा श्री वीरेंद्र-केशव साहित्य-परिषद् ओरछा राज्य ने भी इस अवसर के लिए अपने प्रतिनिधि निर्वाचित किए थे।

एकेडेमी के सभापति राइट आनरेबुल डाक्टर सर तेज बहादुर सप्रू, के० सी० एस्० आई०, पी० सी० ने कान्फ़्रेंस का उद्घाटन किया तथा सभापति का आसन ग्रहण किया।

सभापति महोदय ने यह बताया कि हिंदुस्तानी एकेडेमी को स्थापित हुए ग्यारह वर्ष हो चुके हैं। इस बीच में उस ने उर्दू तथा हिंदी की बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन किया है। एकेडेमी का व्यय सरकार के प्रदान से चलता है परंतु इस की रक़म में बराबर कमी होती रही है और वह अब पहले से आधी हो गई है। इस के कारण एकेडेमी को अपने निर्दिष्ट आयोजन में बराबर काट-छाँट करनी पड़ी है। यदि आर्थिक कठिनाइयों का निरंतर सामना न करना पड़ता तो निस्संदेह एकेडेमी और अधिक परिमाण में काम प्रस्तुत करती। एकेडेमी ने अब तक दो लक्ष्य अपने सामने रक्खे हैं। एक तो यह कि वह केवल ऐसे ग्रंथ जनता के सामने उपस्थित करे जो कि एक एकेडेमी जैसी संस्था की प्रतिष्ठा के उपयुक्त हों। एकेडेमी ने केवल बाज़ार की माँग की पूर्ति अथवा आर्थिक लाभ मात्र के उद्देश्य से प्रकाशन नहीं प्रस्तुत किए हैं। इस के अतिरिक्त एकेडेमी ने हिंदी और उर्दू के प्रति समान भाव रखते हुए पुस्तक-प्रकाशन की योजना की है। किसी एक भाषा के प्रति पक्षपात नहीं दिखाया है। अनुपातत: किसी भाषा की कम या अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हों—इस का एकेडेमी की नीति पर प्रभाव नहीं पड़ा है। सभापति महोदय ने यह भी आशा प्रकट की कि इस नीति का भविष्य में भी पालन होता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा के विषय में सर तेज बहादुर सप्रू ने कहा कि इसे वह स्वीकार करते हैं कि वह सरल होनी चाहिए। फिर भी उन्हों ने कहा कि यह बात छिपी नहीं है कि हिंदी और उर्दू भाषाएं अलग-अलग मार्ग ग्रहण करती जा रही हैं और इस प्रकार एक दूसरे से पृथक् होती जा रही हैं। उन्हों ने गंगा और जमुना की भांति दोनों के मिलने की आशा छोड़ दी। पचास वर्ष पहले जो भी संभव रहा हो, वर्तमान प्रवृत्तियां ऐसी हैं कि यह बहुत कम संभव जान पड़ता है कि हिंदी और उर्दू एक भाषा हो जायँगी। उन्हों ने बताया कि वह हिंदी तथा उर्दू के कई पत्रों के ग्राहक रहे हैं और इस बात को वह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि दोनों ही भाषाओं के लेखक अपनी-अपनी भाषा को कठिन बनाते जा रहे हैं, यहां तक कि साधारण जनता को एक-दूसरे की भाषा के ७५ फ़ी सदी शब्द अपरिचित जान पड़ते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने की बड़ी आवश्यकता है, यदि हम चाहते हैं कि हिंदी और उर्दू बोलने वालों के बीच दुभाषिये की आवश्यकता न आ पड़े। उन्हों ने कहा कि बनारस और कानपुर की हिंदी का मेरठ और दिल्ली में समझना कठिन होगा, इसी प्रकार पंजाब की उर्दू आसानी से लखनऊ और दिल्ली में न समझी जायेगी। सभापति महोदय ने कहा कि स्वयं उन की रुचि की उर्दू वह है जो कि मौलवी अब्दुल हक़ के 'उर्दू' नाम के दकन से प्रकाशित होने वाले रिसाले में लिखी जाती है।

सर तेज बहादुर सप्रू ने बताया कि यह बहुत समय से उन की निश्चित धारणा रही है कि किसी भी जाति की उच्च शिक्षा समुचित रूप से एक विदेशी भाषा द्वारा होना संभव नहीं है। इसी सें वह हैदराबाद की उस्मानिया यूनिवर्सिटी के आयोजन को पसंद करते रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा केवल हिंदी-उर्दू अथवा प्रांतीय भाषाओं के द्वारा संभव है, इस लिए इन के साहित्यों को परिपूर्ण करने का कार्य महत्तर है। उन्हों ने कहा कि वह अंग्रेज़ी भाषा के विरोधी नहीं हैं, अथवा किसी भी विदेशी भाषा से उन्हें विरोध नहीं। सच तो यह है कि उन की दृष्टि में इस देश के नवयुवक जैसा विदेशी भाषाओं को सीखना चाहिए नहीं सीखते। अंग्रेज़ी से देश ने बहुत सीखा है। पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी आकांक्षाओं को जागृत किया है, फिर भी राष्ट्रीय शिक्षा का माध्यम देश की भाषा ही हो सकती है।

सभापति महोदय ने कहा कि हिंदुस्तानी एकेडेमी की तुलना अक्सर पाश्चात्य एकेडेमियों से करने का प्रयत्न होता है। ऐसा करना अनुचित है। हिंदुस्तानी एकेडेमी ने अपने जीवन के केवल ग्यारह वर्ष पूरे किए हैं। और एकेडेमियों के पीछे सैकड़ों वर्षों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास है। सर तेज बहादुर सप्रू ने इस बात की चर्चा की कि केवल तीन वर्ष पूर्व वह फ़्रांसीसी एकेडेमी के एक समारोह के अवसर पर पेरिस में आमंत्रित थे। उस अवसर के लिए एक लाख टिकट बिके थे। उस संस्था की उन्नति तथा पोषण में अरबों धन लगा है। उस के क़तार के क़तार विशाल भवन हैं; पुस्तकालय में लाखों छपी और हस्तलिखित पुस्तकें हैं; हज़ारों दर्शक नित्य वहां आते हैं। बड़े से बड़े लेखकों को उस की सदस्यता के लिए वर्षों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। अनातोल फ़्रांस जैसे यशस्वी लेखक को उस की सदस्यता के लिए ४० वर्षों की चिर-प्रतीक्षा करनी पड़ी थी!

इस के विपरीत हिंदुस्तानी एकेडेमी के पास बहुत परिमित धन है, अपनी इमारत तक नहीं है, केवल कुछ हज़ार पुस्तकें इस के पुस्तकालय में हैं; नए ग्रेजुएट इस की सदस्यता के आकांक्षी हैं। ऐसी परिस्थिति में पश्चिम की गौरवान्वित एकेडेमियों से इस की तुलना नितांत अनुचित होगी। फिर भी सभापति महोदय ने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि सीमित साधनों द्वारा एकेडेमी ने बहुत उपयोगी काम किया है और यदि सरकार इस के प्रति सहानुभूति दिखाती रही और जनता इस के साथ सहयोग करती रही तो यह अमूल्य राष्ट्रीय सेवा कर सकती है।

अंत में सर तेज बहादुर सप्रू ने कहा कि वह चाहे इस संस्था के सभापति रहें चाहे न रहें इस की मंगल-कामना सदा उन के हृदय में रहेगी और जब भी आवश्यकता होगी वह इस की सेवा के लिए तत्पर रहेंगे।

सभापति के भाषण के अनंतर हिंदी-विभाग के सभापति रावराजा रायबहादुर डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र, डी० लिट्० का मौखिक भाषण हुआ।

डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र ने यह बताया कि हिंदी और उर्दू भाषाएं वास्तव में एक हैं, अर्थात् उन का व्याकरण प्रायः समान है। जो भेद दिखाई पड़ता है वह शब्दकोष के कारण। उर्दू और हिंदी के बढ़ते हुए भेद-भाव का कारण साहित्य से उतना संबंध नहीं रखता जितना कि राजनीति और सामाजिक परिस्थितियों से। उन्हों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि दोनों के बीच के पार्थक्य को कम करने का पूर्णरूप से प्रयत्न होना चाहिए और यह भी बताया कि इस दिशा में हिंदुस्तानी एकेडेमी ने स्तुत्य कार्य किया है। उन्हों नेक हा कि यदि हिंदू और मुसलमान सांप्रदायिक भावनाओं को छोड़ कर आपस में विशेष मेल दिखाएं तो भाषा और साहित्य का प्रश्न भी सहज में हल हो जायगा। वास्तव में यह बात नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हिंदी केवल हिंदुओं की भाषा हो और उर्दू केवल मुसलमानों की। वक्ता ने कहा कि यह बात इतनी स्पष्ट है कि इस के समर्थन में उन्हें साहित्यिकों तथा लेखकों के नाम न गिनाने पड़ेंगे। डाक्टर मिश्र ने हिंदुस्तानी एकेडेमी के इस निश्चय की सूचना देते हुए कि आम भाषा के लिए दो पुरस्कार दिए जायँगे, इसे शुभ-सूचक बताया।

उर्दू-विभाग के सभापति सैयद सज्जाद हैदर साहब का भाषण विस्तृत और लिखित था। आप ने न केवल भाषा के प्रश्न पर प्रकाश डाला वरन् लिपि-संबंधी प्रश्न पर भी अपना वक्तव्य दिया। आप का भाषण 'हिंदुस्तानी' (उर्दू) अप्रैल में प्रकाशित हुआ है और उस का एक अंश इस पत्रिका के आगामी अंक में उद्धृत किया जायगा।

उपयुक्त तीनों भाषणों के अनंतर हिंदुस्तानी एकेडेमी के जेनरल सेक्रेटरी महोदय डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्०, ने धन्यवाद देते हुए एक भाषण दिया जिस में कि उन्हों ने एकेडेमी के दस-ग्यारह वर्ष के कार्यों का संक्षेप में ब्यौरा दिया और भाषा तथा लिपि के प्रश्नों पर भी प्रकाश डाला। आप का भाषण इसी अंक में अन्यत्र दिया जा रहा है।

दूसरे दिन, २० मार्च को, ९ बजे प्रातः काल हिंदी तथा उर्दू विभागों की अलग-अलग बैठकें हुईं। हिंदी-विभाग के सभापति के आसन पर रावराजा डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र थे।

इस अवसर के लिए प्राप्त निबंधों की सूची इस प्रकार है—

१—पारिभाषिक शब्द और शिक्षा का माध्यम—श्री कालिदास कपूर, एम् ए० (लखनऊ)

२—साहित्यिकों की स्मृतिरक्षा का प्रश्न—श्री प्रेमनारायण अग्रवाल, एम्० ए० (इटावा)

३—हिंदी में शब्दों के लिंग-भेद—श्री किशोरीदास बाजपेयी (हरिद्वार)

४—हिंदी लिपि और भाषा में सुधार का आयोजन—श्री रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी० (कासगंज)

५—वर्तमान हिंदी साहित्य में प्रवृत्तियां—ठाकुर मार्कंडेय सिंह, एम्० ए०, साहित्यरत्न (बनारस)

६—मनु वैवस्वत से पूर्व का भारत—श्री शुकदेव बिहारी मिश्र (लखनऊ)

७—हिंदी साहित्य में शृंगार आंदोलन—श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम्० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—चित्रकार मोलाराम—श्री मुकंदीलाल, बी० ए० (आक्सन) (लैंसडाउन)

९—हिंदी में गीति-काव्य—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी (बनारस)

सब से प्रथम श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का निबंध पढ़ा गया और इस के संबंध में वाद-विवाद भी अच्छा हुआ। वाद-विवाद में भाग लेने वाले सज्जनों में डाक्टर बाबूराम सक्सेना; ठाकुर जयदेव सिंह, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, पंडित देवीप्रसाद शुक्ल तथा स्वयं सभापति महोदय थे।

दूसरा निबंध श्रीयुत शांतिप्रिय द्विवेदी का 'हिंदी में गीति-काव्य' शीर्षक पढ़ा गया। इस के संबंध में वाद-विवाद में भाग लेने वाले सज्जनों में प्रमुख ठाकुर जयदेव सिंह, श्रीयुत ज्योतिप्रसाद मिश्र, 'निर्मल', तथा श्रीयुत नरेंद्र शर्मा, एम्० ए० थे।

तीसरा निबंध काशी के उदय प्रताप कालिज के प्रतिनिधि ठाकुर मार्कंडेय सिंह ने 'वर्तमान हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां' शीर्षक पढ़ा।

सभी निबंध गंभीर थे और सुविधानुसार प्रकाशित किए जायँगे।

चूंकि सांप्रदायिक दंगों के कारण नगर की शांति भंग हो गई थी इस लिए दूसरे समय की बैठक स्थगित कर दी गई और शेष अनपढ़े निबंध पठित स्वीकार कर लिए गए।

उर्दू-विभाग में पढ़े गए अथवा प्राप्त निबंधों की सूची इस प्रकार है—

१—बाज़ पुराने लफ़्ज़ों की नई तहक़ीक़—अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी।

२—उर्दू के क़दीम कुतबे—मौलवी अब्दुल हक़।

३—उर्दू नसर के एक मुंतख़ब मजमूए की ज़रूरत—मौलाना अब्दुस्सलाम नदवी।

४—इक़बाल और इबलीस—जनाब आल अहमद सरूर

५—उर्दू शायरी पर हिंदू तहज़ीब व माशरत और हिंदुस्तान के जुग़राफ़ियाई असरात—मौलवी शाह मुईनुद्दीन अहमद नदवी।

६—नज़ीर अक़बराबादी की ग़ज़लगोई—जनाब लतीफ़ुद्दीन अहमद, अकबराबादी।

७—तारीख़ अवध—जनाब मुहम्मद तक़ी अहमद, एम्० ए०

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर ताराचंद का वक्तव्य

इस साल हिंदुस्तानी एकेडमी के जीवन के दस बरस पूरे होते हैं। इन बरसों में एकेडमी ने कहां तक अपने मक़सदों को पूरा किया, किस हद तक हिंदी और उर्दू भाषा की सेवा की, पुराने साहित्य की रक्षा और नए साहित्य की रचना के लिए क्या-क्या जतन किए, यहां इन सब बातों का थोड़ा वर्नन साहित्य के गाहकों के जानने के लिए ज़रूरी है।

एकेडमी के सामने जो काम है उस की कठिनाई वही लोग भली-भाँति जान सकते हैं जिन्हें इस तरह के काम का कुछ तजरुबा है। साहित्य ऐसी चीज़ तो है नहीं कि उसे मशीन में ढाल कर तुरंत तैयार कर लिया जाय। साहित्य न रुपये के ज़ोर से न नाम के लालच से बन सकता है। न यह मुमकिन है कि मदरसों और पाठशालाओं में साहित्य के रचने वाले कारीगरों की तरह सिखा-पढ़ा लिए जायँ। साहित्य की रूह अपनी इच्छा से जहां चाहती है विचरती है, मनमाने आती और जाती है। न उसे कोई ताक़त पकड़ सकती है न कोई बंधन बाँध सकता है। किस देश में किस समय क्यों साहित्य के बादशाह पैदा होते हैं, इस का न कोई क़ायदा मालूम होता है न क़ानून। चौदहवीं पंद्रहवीं सदी में इटली के समाज की हालत बहुत गिरी हुई थी लेकिन साहित्य आसमान की चोटियों से बातें करता था, डांटे, पीट्रार्क, एरीऔस्टो, बोकाचीयों ने इतालवी भाषा का माथा ऊँचा किया था। अठारहवीं सदी के आख़ीर और उन्नीसवीं के शुरू में हिंदुस्तान की हालत कहने लायक़ न थी लेकिन इसी अँधेरे ज़माने में मीर और ग़ालिब सरीखे कवि फले फूले। अठारहवीं सदी इंगलिस्तान की तारीख़ में वह ज़माना है जिस में समंदरों और महाद्वीपों पर उस का साम्राज्य क़ायम हुआ लेकिन इसी सदी का अंग्रेज़ी साहित्य बिल्कुल ही रूखा और फीका है।

इस से यह नतीजा निकालना कि एकेडमी एक व्यर्थ संस्था है ठीक नहीं। क्योंकि अगर कवि, नाटककार, नावेल लिखने वाले, बनाए से नहीं बनते, क़ुद्रत की अपनी मर्ज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पैदा होते हैं तो इस का अर्थ यह नहीं कि फ़ल्सफ़ा (दर्शन), इतिहास (तारीख़), समाज-विज्ञान (मदनियात और सियासियात), ज्योतिष (नजूम), गणित (रियाज़ीयात), जैसे अनेक शास्त्रों पर किताबें लिखने वाले मुहैया नहीं हो सकते। यह ज़रूर है कि इन विषयों पर अच्छे लेखक आसानी से नहीं मिल सकते क्योंकि अभी तक हमारे देश में अपनी भाषा में ऊँचे दर्जे की शिक्षा नहीं होती और इल्म की किताबों के पढ़ने वालों की बहुत कमी है। लेकिन ऐसी किताबों को तैयार कराना और इस तरफ़ लोगों की रुचि मोड़ना एकेडमी जैसी संस्थाओं का काम है।

यह किताबें कई तरह की हो सकती हैं। कुछ तो अंग्रेज़ी या दूसरी भाषाओं से तरजुमा कर के, कुछ अंग्रेज़ी किताबों के सहारे लिख कर और कुछ नए सिरे से और मौलिक ढंग पर तैयार की जा सकती हैं।

हिंदुस्तानी एकेडमी ने पिछले दस बरस में इन्हीं तरीक़ों पर काम किया है और साहित्य यानी अदब की छै, जीवन-चरित (अदबी सवानिह-उम्री) की पाँच, पुराने साहित्य की नौ, इतिहास (तारीख़) की तेरह, इतिहास के नेताओं (तारीख़ी रहनुमाओं) पर पाँच, विज्ञान की छै, कारीगरी की तीन, दर्शन (फ़ल्सफ़े) पर चार, समाज-विज्ञान पर आठ, चित्रकला (मुसव्विरी) पर दो, हिंदी और उर्दू की किताबों की जाँच पर दो, कुल जोड़ कर इक्यासी किताबें छपवाई हैं। साहित्य या अदब की आठ और विज्ञान की दो किताबों का तर्जुमा इस के अलावा है।

साहित्य की तरफ़ लिखने वालों का ध्यान दिलाने के लिये २३ इनाम पाँच-पाँच सौ रुपये के और आठ सौ-सौ रुपये के बाँटे हैं। अपने विषय के पंडितों और आलिमों से लेक्चर दिलवाए हैं। कांफ़्रेंसों में हिंदी और उर्दू से दिलचस्पी रखने वालों को इकट्ठा करने की कोशिश की है और इन जलसों में भाषा (ज़बान) और साहित्य (अदब) के बड़े-बड़े सवालों पर विचार हुआ है। हिंदुस्तान भर में अपनी भाषा और अपने साहित्य की उन्नति के लिए बड़े ज़ोर की कोशिश हो रही है। इस में हिंदुस्तानी एकेडमी ने जो भाग लिया है वह सराहने योग्य है। एकेडमी ने न केवल ज्ञान के भंडार में अच्छा इज़ाफ़ा किया है, इस ने उन रुकावटों की तरफ़ ध्यान दिलाया है जो हमारे आगे बढ़ने के रास्ते में बाधा डाल रही हैं।

इन में से दो तीन का ज़िक्र कर देना अनुचित नहीं होगा। पहली कठिनाई जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सामना करना है वह हिंदी और उर्दू लिपि या रस्मुल ख़त से संबंध रखती है। यह विचार दिन पर दिन फैलता जाता है कि हिंदी और उर्दू एक ही तरह लिखी जायँ तो इस से देस की बहुत भलाई होगी। देस के नेताओं में कई ने यह ख़याल ज़ाहिर किया है कि नागरी और अरबी ख़तों की जगह रोमन ख़त इख़्तियार कर लेना चाहिए। इस में फ़ायदे बहुत से हैं; लिखने और छापने के लिए रोमन लिपि औरों से कहीं अच्छी है। इस में वर्ण थोड़े हैं इस लिए बच्चों को सीखने में आसानी है। दुनिया की सभी अगुआ क़ौमें रोमन का इस्तैमाल करती हैं, एशिया में तुर्कों ने इसे अपनाया है और जापान में जतन हो रहा है कि रोमन लिपि जापानी की जगह ले ले। हिंदुस्तान में रोमन के २६ वर्णों से आसानी से काम नहीं चल सकता। इस लिए इस में काट-छाँट करनी पड़ेगी और वर्ण बढ़ाने होंगे। इस पर भी बहुत से लोग अपनी पुरानी जानी-बूझी लिपियों को छोड़ना पसंद नहीं करेंगे। इन में बहुत से तो लकीर के फ़कीर हैं लेकिन बहुत से सचमुच नागरी को और लिपियों के मुक़ाबले में ज़ियादा वैज्ञानिक समझते हैं।

यदि हम अभी इस बात के लिए तैयार न हों कि बिल्कुल नई लिपि को स्वीकार कर लें, तो भी हमें नागरी और उर्दू के सुधार की कोशिश करनी चाहिए। नागरी के लिखने का ढंग ऐसा है कि समय अधिक लगता है और इस के छापने में बड़ी कठिनाइयां हैं। इस में कई वर्ण हमारी बोली के लिए फ़िज़ूल हैं जैसे ङ, ञ, ष, ऋ, ॡ, और कई ज़रूरी स्वर और व्यंजन नहीं हैं जैसे ऑ, और ऐ, क़, ख़, ग़, वग़ैरा।

उर्दू रस्मुल ख़त में और भी ज़ियादा दोष हैं। ث, س और ص के लिए हमारे गले से एक ही आवाज़ निकलती है, इसी तरह ز, ذ, ظ और ض के लिए और ت और ط के लिए। वर्णों की बहुतायत सीखने वालों की दिक़्क़तों को बढ़ाती है। उर्दू का इमला जैसा कठिन और बेक़ायदा है उसे सभी जानते हैं। लिपि ऐसी होनी चाहिए जिस में एक वर्ण एक आवाज़ के लिए नियत हो। न कई आवाज़ों के लिए एक वर्ण और न एक आवाज़ के लिए कई वर्ण हों। नागरी और उर्दू दोनों को ही इस तरफ़ ध्यान देना उचित है।

उर्दू लिपि की बड़ी ख़राबी यह है कि लिखी तो जाती है नस्तालीक़ तर्ज़ में और जब सीसे के हर्फ़ों में छपती है तो नस्ख़ के तर्ज़ में। बहुत से लोग जिन की आँखें नस्तालीक़ की आदी हैं नस्ख़ को पसंद नहीं करते। इसी वजह से पुरानी पत्थर की छपाई अभी तक जारी है और उर्दू को न लाईनोटाइप नसीब है और न और छापे की सुभीताएं। नतीजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि बड़ी तादाद में उर्दू की चीज़ों का छापना और उन्हें सस्ते दामों में बेचना असंभव सा है। इस हालत पर ग़ौर करने की ज़रूरत है।

दूसरा प्रश्न इमला का है। हिंदी और उर्दू दोनों में हर्फ़ों के जोड़ने और इस्तैमाल करने के बारे में मतभेद हैं। संस्कृत से जो शब्द आए हैं उन्हें ज्यों का त्यों रखा जाय या उस तरह जैसे वे अब बोले जाते हैं। नाक से निकलने वाली आवाज़ के लिए संस्कृत में पाँच-छै हर्फ़ हैं। हिंदी में उन सब की ज़रूरत नहीं। राम लिखना हो तो आ की मात्रा र के पीछे लगती है रिम लिखना हो तो इ की मात्रा र से पहले आती है। रेफ़ का भी झगड़ा है भ्रम में भ के नीचे और मर्म्म में म के ऊपर। यह ऐसी गुत्थियां हैं जिन के सुलझाने की ज़रूरत है।

उर्दू के इमला का हाल और भी बेढब है। अरबी के शब्द अरबी के तरीक़े पर फ़ारसी के फ़ारसी के मुताबिक़ और हिंदुस्तानी हिंदी ढंग पर लिखे जाते हैं। लेकिन तलफ़्फ़ुज़ (उच्चारण) सब का हिंदुस्तानी है और इस कारण अरबी फ़ारसी से अनजान लोगों के लिए इन के हिज्जे करने में बड़ी कठिनाई होती है। बहुत से हिंदी शब्द भी फ़ारसी ढंग पर लिखे जाते हैं। उर्दू के फैलाव के लिए यह बड़ी रुकावट है। सब जानते हैं कि अमरीका में अंग्रेज़ी के इमला के सुधार की कोशिश हो रही है। कितना अच्छा होता कि हम भी इस तरफ़ तवज्जह देते।

तीसरा सवाल ज़बान का है। कई साल से इस पर बहस जारी है। थोड़े दिन हुए बिहार की सरकार ने एक कमेटी इस पर ग़ौर करने के लिए नियत की है। सवाल बड़े महत्व का है क्योंकि इस के ठीक-ठीक हल होने पर हमारी शिक्षा का भविष्य मुनहसिर है। इस सवाल के कई पहलू हैं इन में से एक इस्तलाहों (पारिभाषिक) का है। हिंदी और उर्दू की विज्ञान की पुस्तकों के लिए अलग-अलग पारिभाषिक शब्द (इस्तलाहें) गढ़े जायँ या एक समान। प्रश्न कठिन है लेकिन नया नहीं। दुनिया की और ज़बानों के सामने भी यह उठ चुका है। जिन मुल्क़ों में सजीव और बलवान जातियां हैं उन्हों ने दूसरी ज़बानों से इस्तलाहों के लिए माद्दे लिए और उन्हें स्वदेशी साँचों में ढाला। मिसाल के तौर पर अंग्रेज़ी है। इस की इस्तलाहों का सोता लातीनी और यूनानी भाषाएं हैं। मगर इन ज़बानों के लफ़्ज़ों को ठोक-पीट कर अंग्रेज़ी बना लिया है। यही हाल यूरोप की दूसरी भाषाओं का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया की ज़बानों का इतिहास कुछ अनोखा है। अरबी ने सीरीयन और यूनानी से पारिभाषिक शब्द लिए। अरबी सेमेटिक और यूनानी आर्यन हैं लेकिन अरबों ने इस का कुछ ख़्याल न किया। जब पुरानी पहलवी की जगह फ़ारसी ने ली तो कुछ ही अर्से में मुसलमानों ने ईरान फ़तह कर लिया। फ़ारसी पर जो आर्यभाषा है अरबी का रंग चढ़ने लगा। फ़िरदौसी ने कोशिश की कि इस झुकाव को रोके। उस ने अरबी की जगह ठेठ फ़ारसी की इस्तलाहों का इस्तेमाल किया। जैसे—

माद्दा (अरबी)	सरमाया (फ़ारसी)
उन्सर ,,	गौहर ,,
सुकून ,,	आराम ,,
दौरान ,,	गश्त ,,
फ़ना ,,	तबाही ,,
वुजूद ,,	तवानाई ,,
हरकत ,,	जुंबिश ,,
मतहर्रिक बिल इरादा (,,)	पोयंदा ,,
तग़ैयुर ,,	फ़रसूदन ,,

अफ़सोस है कि फ़िरदौसी की कोशिश निष्फल साबित हुई।

लेकिन हज़ार बरस पीछे आज ईरान और टर्की में फ़िरदौसी की नीति पर ही इस्तलाहों का चुनाव हो रहा है।

हिंदुस्तान में कई बार ऐसी घटनाएं हुई हैं। जब बुद्ध ने अपना मत चलाया तो उस ने संस्कृत छोड़ आम लोगों की बोली को प्रचार का ज़रिया ठहराया। उस के चेलों ने इसी बोली में दर्शन और धर्म की पुस्तकें रचीं। उन की इस्तलाहें संस्कृत की नहीं पाली भाषा की थीं। जैसे पुग्गल, अत्तन, धम्म, संखार, कम्म, कप्प, मेत्ता, कस्स, सन्ना, तन्हा, वितक्का, पीति, चंद, विन्नान इसी तरह जैनियों ने अपभ्रंश और कबीर और संत-मार्ग वालों ने बोल-चाल की भाषा से पारिभाषिक शब्द लिए। जब ग़दर बाद बिहार और उत्तरी हिंदुस्तान में नीचे, बीच के और ऊँचे दर्जे की शिक्षा का बंदोबस्त होने लगा और बीच के दर्जे की किताबों की देस की बोली में ज़रूरत हुई तो सवाल इस्तलाहों का उठा। राजा शिवप्रसाद ने तारीख़ की ऐसी किताबें लिखीं जो सब पढ़ सकें और जिन की ज़बान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक हो। उन्हों ने इन किताबों के आरंभ में केवल २४ या २५ शब्दों की फ़ेहरिस्त लगा दी जो उर्दू और हिंदी में अलग अलग थे।

मिर्ज़ा क़तील ने मंतिक़ (तर्क) की इस्तलाहें बनाईं। उन का नमूना यह है—

ज्यूं का त्यूं	तस्दीक़	Judgment
भरपूर	महमूल	Object
पूरा तोड़	सालिबा	Negative
इकहरी ऊँच नीच	उमूमो ख़सूस मुतलक़	Absolute—general and particular
असल असल	हद	Term
ठिकाना	मौज़ू इल्म	Subject
अपना अपना काम	खास्सा	Property
बोल	मौज़ू	Subject
पूरा जोड़	मूजिबा	Affirmative proposition
अचूती	ज़ुज़ई	Particular
मुराद का घर	मानी	Import
वह और वह और	तबायन	Difference

इस तरह की और भी कोशिशें हुईं लेकिन सफल नहीं हुईं। नतीजा यह हुआ कि बजाय अपनी भाषा के शिक्षा अंग्रेज़ी के ज़रिए होने लगी। बीसवीं सदी के शुरू से स्वदेशी आंदोलन ने इस तरफ़ फिर ज़ोर से ध्यान दिलाया है। इस समय राष्ट्रीयता की लहर वेग के साथ बढ़ रही है और हिंदुस्तानी भाषाओं को ऊँची से ऊँची शिक्षा का ज़रिया बनाने का जतन हो रहा है। ऐसे अवसर पर हमें फ़ैसला करना चाहिए कि बुद्ध, कबीर और मिर्ज़ा क़तील के रास्ते पर चलें या मज़हबी और समाजी काँटों में उलझ कर रह जायँ और साहित्य, दर्शन और विज्ञान के उमड़ते दरिया को दो अलग-अलग धाराओं में बाँट कर धीमा और कमज़ोर कर दें। इन और ऐसे ही और प्रश्नों पर विचार करने के लिए यह कान्फ़्रेंस हो रही है। मुझे आशा है कि राइट आनरेबल सर तेज बहादुर सप्रू, जिन के ज्ञान, अनुभव और विवेक के लिए हमारे दिलों में बड़ी श्रद्धा है हमारे विचारों को अच्छे रास्ते पर डालेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम सब उन के आभारी हैं कि उन्हों ने कामों में बझे होने पर भी कान्फ़्रेंस के लिए समय निकाला। मैं आप सब की तरफ़ से उन को धन्यवाद कहता हूं। रावराजा पंडित श्यामबिहारी मिश्र सदा ही हिंदुस्तानी एकेडमी की तन मन से सहायता करते रहते हैं। बहुत थोड़ी सूचना होते हुए भी आप ने सभापति का पद स्वीकार कर हमें बाधित किया।

मिस्टर सज्जाद हैदर से एकेडमी के सब मेंबर और उर्दू से प्रेम रखने वाले सज्जन ख़ूब परिचित हैं आप का उर्दू के लेखकों में बड़ा नाम है। हमारी दावत, क़बूल कर के आप ने हम पर जो इहसान किया है उसे हम नहीं भूल सकते। आप की सदारत में उमेद है हमारा जलसा कामयाब होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना

रागतरंगिणी—कवि लोचन कृत (दर्भंगा राज प्रेस, दर्भंगा)

संगीत के विषय पर पुरानी पुस्तकें संस्कृत में तो मिलती हैं, परंतु भाषा में बहुत कम। और पुराने गाने भी बहुत कम मिलते हैं। परंतु पुराने कवियों को संगीत का पूर्ण ज्ञान था, और पद्य-रचना में सदा इस का ध्यान रखते थे कि पद्य किस राग में गाए जा सकते हैं। संगीत-शास्त्र पर फिर भी भाषा में पुस्तकें कम मिलती हैं। मिथिला में, उजान ग्राम में, एक लोचन कवि रहते थे। इन के वंशज अब भी उसी गाँव में रहते हैं। लोचन कवि का जीवन-काल लगभग १५८० शाके था। अर्थात् लगभग १६६० ईस्वी। उस समय राजा महिनाथ ठाकुर मिथिला के राजा थे। लोचन कहते हैं—

"वीरः श्रीमहिनाथभूपतिलकः शास्तेऽधुना मैथिलान्".

उन के छोटे भाई नरपति ठाकुर की आज्ञा से कवि ने "रागतरंगिणी" की रचना की। इस पुस्तक में पाँच तरंग हैं। पहले में रागस्वरूपकथन; दूसरे में रागिनीस्वरूपकथन; तीसरे में उत्पत्ति और नाद-निरूपण; चौथे में तिरहुतदेशीय संकीर्ण रागविवरण; और पाँचवें में स्वरप्रकरण, वीणावाद्यक विषय, रागगान-समय इत्यादि का वर्णन है।

ग्रंथकार ने राग और रागिणियों का यों विभाग किया है—

(१) राग—भैरव

रागिणी—बंगाली; मधुमाधवी; बराड़ी; भैरवी; सिंधु

(२) राग—कौशिक

रागिणी—टोड़ी; खंभावती; गौरी; कुकुभ; गुणकरी

(३) राग—हिंदोल

रागिणी—वेलावली; देशाख; रामकली; ललित; पटमंजरी

(४) राग—दीपक

रागिणी—केदारा; कानरा; देश; कामोद; विहाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) राग—श्रीराग

राग़िणी—वसंत; मालव; मालश्री; धनाश्री; असावरी

(६) राग—मेघराग

रागिणी—मलारी; देशिका; भूपाली; टंक; दक्षिण गुर्जरी

विशेष उल्लेखनीय विषय यह है कि इस पुस्तक में संस्कृत, ब्रजभाषा, और मैथिली, तीनों भाषाओं का प्रयोग किया गया है। और उदाहरण में जिन मैथिली कवियों के पद्य दिए गए हैं, उन की संख्या ३९ है। उन में से प्रधान कवियों के ये नाम हैं—विद्यापति, लोचन, गदाधर, हरिदास, धरणीधर, गोविंद, जीवनाथ, गंगाधर, प्रीतिनाथ, भवानीनाथ, पूरनमल्ल, जयदेव। एक विलक्षण कवि ग्यासदेव सुलतान मुसलमान भी मैथिली में कविता करते थे।

ग्रंथ के आरंभ में कवि लिखता है कि सकल-साधारण कें समझने के लिए कहीं-कहीं "मध्यदेश भाषा"—अर्थात् ब्रजभाषा—में उदाहरण दिए जाएंगे। इस से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा का आधिपत्य उस समय भी—लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व भी—प्रायः समस्त उत्तरीय भारत पर था। इस से यह भी स्पष्ट है कि मैथिली में काव्य-रचना उस युग में भी अनेक कवि करते थे, और कई तो बहुत ही ललित पद्य इस ग्रंथ में हैं।

पहले कुछ हिंदी कविता के उदाहरण लीजिए। हिंदोल का स्वरूप वर्णन—

रूप गर्वयुत खर्व पर्व हिमधाम समानन,
गन्धर्वाधिक सर्वकला विद्या कुल कानन।
नटवर कलित सुवेश विमल पारावत सुन्दर,
कुण्डल ललित कपोल लोल हिन्दोल पुरन्दर।
करें पकरि नारि उर आनि मुख निरखि मुसकाय पुनि,
रास करत लघु लोल गति सो कह्यो वीर हनुमन्त मुनि।
खर्वरूप गुनगर्व गहत सर्वाधिक सुन्दर,
तन कपोत सम वरन करन कुण्डल कामुक वर।
नवल नितम्बिनि अङ्क अङ्क भरि निरखि निरखि मुख।
थोर थोर हिन्दोल चलत करत केलि सुख॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब राग राग राजत रमन गावत जेहि गन्धर्व जन,
लघु लोल गमन बहु मोल मह कह हिन्दोल जेहि जति अजन ।।

मैथिली के पद अनेक कवियों के रचित हैं, और भिन्न-भिन्न श्रेणी के हैं। एक सुंदर पद यह है--

की पर वचनैं कन्त देल कान।
की पर कामिनि हरल गेयान ।।
की तन्हि विसरल पुर्बक नेह,
की जीवन आबे पड़ल सँदेह।
की परिनत भेल पूर्बक पाप,
की अपराधे कयल बिहिँ साप।
की सखि कौन करब परकार,
की अविनय दहुँ परल हमार।
की हमें काम कला एक घाटि,
की दहुँ समयक यैह परिपाटि।
मधुसूदन भन मने अवधारि,
की धैरजें नहि मिलत मुरारि ।।

अमरनाथ झा

लाला देवराज--लेखक सत्यदेव विद्यालंकार। प्रकाशक, मंत्री मुख्यसभा कन्या-महाविद्यालय, जालंधर। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक पंजाब के कवि स्वर्गीय लाला देवराज की जीवनी है। पंजाब में स्त्री-शिक्षा तथा उस के द्वारा हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचार का श्रेय जालंधर के कन्या-महाविद्यालय को है और उस के संस्थापक लाला देवराज थे। इस तरह स्वर्गीय लाला जी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक थे। उन के कार्य का क्षेत्र ऐसा था कि उन की ख्याति राजनीति आदि अन्य क्षेत्रों में कार्य करने वालों के समान नहीं हो सकती। जीवनी सुंदर और आकर्षक शैली में लिखी गई है और हिंदी के सीमित जीवनी-साहित्य को परिपुष्ट करेगी।

धीरेंद्र वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी गद्य-निर्माण––संपादक, श्रीयुत पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

संपादक महोदय हिंदी के सुपरिचित साहित्य-सेवी हैं और एक ऐसा संग्रह निकाल-कर आप ने शिक्षा-कार्य में अच्छा सहयोग किया है। हिंदी गद्य-निर्माण का कार्य (यदि ब्रजभाषा-गद्य को हिंदी-गद्य में न गिनें) तब भी लल्लूलाल, इंशा आदि के समय में ही आरंभ हो चुका था और उन्हें भी इस संग्रह में स्थान मिलना चाहिए था। हां, यदि पुस्तक का शीर्षक वर्तमान या आधुनिक शब्द-संयुक्त होता तब कदाचित् इस की आवश्यकता न होती। संपादक महोदय ने राजा शिवप्रसाद को हिंदी-उर्दू-संबंधी झगड़े को सुलझानेवाला लिखा है, पर वास्तव में उन्हें कितनी सफलता मिली इस का निर्देश भी उचित होता।

इस संग्रह में संपादक महोदय को ले कर तेईस ग्रंथकारों की रचनाओं से उद्धरण लिए गए हैं। भूमिका में अपने को छोड़ कर सभी का संक्षिप्त परिचय संग्रहकार ने दिया है, जिस से इस की उपादेयता और भी बढ़ गई है। लेखों के संग्रह भी विद्यार्थियों की आव-श्यकता को दृष्टि में रख कर किए गए हैं और विविध विषयों पर हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

कवितावली––(गोस्वामी तुलसीदास कृत) संपादक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

यद्यपि गोस्वामी जी ने कवितावली में श्रीराम कथा ही कही है पर इस का अधि-कांश श्री हनुमान जी की वीरता-वर्णन तथा उन के प्रति विनय-निवेदन में ही लग गया है। यह समग्र ग्रंथ कवित्त तथा सवैयों ही में है और प्रथम ही अधिक हैं, इसी से ऐसा नामकरण हुआ है। उक्त छंद के कारण इस ग्रंथ में ओज की मात्रा पूरी है और वास्तव में यह ग्रंथ गोस्वामी जी की रचनाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। गुप्त जी ने भूमिका में इस ग्रंथरत्न की विशिष्टता अच्छी प्रकार दिखलाई है और अंत में टिप्पणी दे कर इस संस्करण की उपादेयता बढ़ा दी है।

पार्वतीमंगल––संपादक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

गोस्वामी तुलसीदास जी की यह एक छोटी-सी रचना है, जिस में शिव-पार्वती-विवाह सोहर छंद में वर्णित है, बीच-बीच में कुल मिला कर १६ छंद हरिगीति के हैं। यह संस्करण विद्यार्थियों के लिए तैयार किया गया है, अतः अंत में प्रायः सौ पदों के अनुवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिए गए हैं और पाद-टिप्पणियां भी दी गई हैं। इस प्रकार यह विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी हो गया है।

अलंकार-प्रकाश और **पिंगल-कौमुदी**--लेखक, आर्येंद्र शर्मा। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

इस रचना के दो भाग हैं। प्रथम में मुख्य-मुख्य शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों की सरल भाषा में विवेचना की गई और द्वितीय में गुरु, लघु, मात्रा आदि तथा वर्णवृत्त और मात्रिक मुख्य छंदों को समझाया गया है। पुस्तक नए विद्यार्थियों के काम की है।

सती कण्णकी--लेखक, डाक्टर गोपालनाथ 'दया'। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

यह तामिल भाषा के एक काव्य के कथानक का उसी ओर के एक विद्वान् द्वारा किया हुआ हिंदी रूपांतर है। राष्ट्रभाषा हिंदी में भारत की सभी भाषाओं के ग्रंथरत्नों का रूपांतर होना वांछनीय है, इस कारण तथा कथानक के निजी गुणों और सरल अनुवाद होने से यह रचना सभी के संग्रह योग्य हो गई है। इस से सतीत्व के प्रताप की गाथाओं के साथ-साथ दक्षिण के अनेक रस्म-रिवाज आदि का भी परिचय मिलता है।

हिंदी पर फ़ारसी का प्रभाव--लेखक, पंडित अंबिकाप्रसाद जी वाजपेयी। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

यद्यपि विद्वान् लेखक ने इतना लंबा निबंध लिख कर हिंदी पर (उर्दू द्वारा) फ़ारसी का प्रभाव दिखलाने का पूरा प्रयास किया है पर वह इस कार्य में विशेष सफल नहीं हो सके हैं। अधिकांश निबंध तो संस्कृत, फ़ारसी आदि भाषाओं ही की विवेचना में ख़र्च हो गया है और अकारण ही लंबे-लंबे उद्धरण दे कर उस की कायवृद्धि की गई है। सूफ़ी-मत और इश्क़ पर सोलह पृष्ठ लिख कर यही निष्कर्ष निकाला कि 'हिंदी पर सूफ़ियों के साहित्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।' रेख़ता और रेख़्ती का कई पृष्ठों में अर्थ लगा कर उसी को हिंदी की जननी मान लिया है क्यों कि वह 'आर्श अपभ्रंश प्राकृत से उत्पन्न हुई है।' हिंदी (खड़ी बोली) उर्दू से उत्पन्न हुई है, ऐसा कुछ लोग कुछ दिनों तक कहते रहे थे, पर उर्दू किस से उत्पन्न हुई है, इसे इन निबंधकार ने अब बतलाया है। इस निबंध की यही विशेषता है। पुस्तक लेखक के अध्यवसाय की परिचायिका मात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि की कथा--(सचित्र) लेखक डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

सरल भाषा तथा रोचक शैली में विद्वान् लेखक ने इस छोटे से ग्रंथ में सृष्टि की बहुत-सी बातें लिख डाली हैं, जिसे पढ़ कर साधारण पाठक भी बहुत-सा तद्विषयक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। पृथ्वी के जल-स्थल भाग तथा आकाश के सूर्य से ले कर उल्का और धूमकेतु तक सभी का विवरण दिया है और इस पृथ्वी पर जीवन का आरंभ किस प्रकार हुआ है, इसे भी दिखलाया है। पुस्तक सभी के पढ़ने योग्य है।

ब्रजरत्न दास

शिक्षा-मनोविज्ञान--लेखक श्रीयुत हंसराज भाटिया, एम्० ए०, प्रकाशक, दि न्यू ईरा पब्लिशर्स, लाहौर। मूल्य २।)

शिक्षण के क्षेत्र में पाश्चात्य में बहुतायत से मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं और हो रहे हैं और उन के परिणाम-स्वरूप वहां की शिक्षा-पद्धति में बराबर उन्नति होती रहती है। यह बात नहीं इस विषय में विवादास्पद मत न हों; फिर भी यदि सतर्कता से काम लिया जाय तो विवादों से अलग रहते हुए अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला जा सकता है। सुयोग्य लेखक ने इसी बात का प्रयत्न प्रस्तुत पुस्तक में किया है। हिंदी में शिक्षण-सिद्धांत तथा मनोविज्ञान दोनों ही विषयों पर पुस्तकें इनी गिनी हैं अतएव इस पुस्तक का सहर्ष स्वागत होना चाहिए।

यह बात पुस्तक को पढ़ते ही स्पष्ट हो जाती है कि लेखक अपने विषय पर अधिकार रखता है और पढ़ी-पढ़ाई पुस्तकों का रूपांतर मात्र नहीं प्रस्तुत करता है। लेखक ने अपने विषय के स्पष्टीकरण में भारतीय छात्रों की मनोवृत्ति का ध्यान रक्खा है। पुस्तक व्यावहारिक ढंग से लिखी गई है और इस से न केवल शिक्षकों को वरन् माता-पिताओं को भी लाभ होगा।

ऐसे वैज्ञानिक विषय पर हिंदी में लिखने में पारिभाषिक शब्दों की कठिनाइयां पद-पद पर आती हैं। लेखक ने इन का साहस के साथ सामना किया है। पुस्तक के अंत में जो पारिभाषिक शब्दों की एक सूची दी गई है उस से इस बात का पता चलता है कि लेखक ने अव्यावहारिक गढ़ंत नहीं की है। इस विषय पर आगे लिखने वाले लेखकों को इन पारिभाषिक शब्दों की सूची से भी पूर्ण लाभ उठाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक ने पुस्तक की वैज्ञानिक मर्यादा बनाए रखते हुए भी विषय का प्रतिपादन बड़े रोचक ढंग से किया है।

भाषा के संबंध में लेखक महोदय लिखते हैं—"प्रायः ऐसे विषयों पर लिखे हुए ग्रंथ 'शुद्ध' हिंदी का ही प्रयोग करते हैं और उर्दू, फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी शब्दों से सख़्त परहेज़ करते, हैं चाहे वह रोज़ व्यवहार में क्यों न आते हों। संभवतः यह दृष्टिकोण साहित्य की दृष्टि से उचित हो पर यहां तो हमेशा यही ध्येय रखा है कि पुस्तक की भाषा को जितना स्पष्ट, सरल और सुबोध बनाया जा सके बनाया जाय जिस से विषय के समझने में कोई कठिनाई न हो। यदि कहीं कठिन वाक्यों और शब्दों का प्रयोग हुआ है तो बहुधा मजबूर हो कर कि कहीं सरलता के लिए विषम भावों का लोप न हो जाय।"

इस उद्धरण से लेखक की नीति भी स्पष्ट हो जायगी और उस की भाषा का नमूना भी मिल जायगा। हम लेखक को आश्वासन दिला सकते हैं कि उस की भाषा को 'हिंदी' मानने में किसी को आपत्ति न होगी।

रा० ट०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-परिचय

[इस स्तंभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में विगत तीन मास में प्रकाशित गंभीर लेखों के शीर्षक, लेखकों के नाम-सहित अंकित किए गए हैं।]

आचार्य द्विवेदी जी का भाषा-सुधार कार्य--श्री प्रेमनारायण टंडन, दक्षिण भारत; जनवरी '३८

आजकल की हिंदी कविता--श्रीमती राजेश्वरी; साहित्य-संदेश; फ़रवरी '३८

उर्दू की उत्पत्ति--श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ३

कवींद्र रवींद्र के मृत्यु-संबंधी विचार--श्री कामेश्वर शर्मा; हंस; मार्च '३८

खड़ी बोली की निरुक्ति--श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ३

गोरखनाथ और उन का साहित्य--श्री रामकुमार वर्मा, एम० ए०; वीणा; मार्च '३८

ग्राम-सुधार--श्रीमती रजनी; माधुरी; मार्च '३८

छायावाद--श्री नगेंद्र; हंस; फ़रवरी '३८

जयशंकर 'प्रसाद'--श्री रामनाथ 'सुमन'; माधुरी; फ़रवरी '३८

'जोश' मलीहाबादी और उन की कविता--श्री चंद्रभूषण सिंह; माधुरी; मार्च '३८

डाक्टर उमेश मिश्र के विद्यापति ठाकुर--श्री भुवनेश्वर झा और श्री रामनाथ झा; विशाल-भारत; मार्च '३८

ढोला मारू रा दूहा का परिचय--स्वर्गीय श्री मुंशी अजमेरी; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ३

तासी लामा की वैचित्र्यपूर्ण जीवन-कहानी--श्री राजेश्वर प्रसाद, एम्० ए०; विश्वमित्र; जनवरी '३८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिब्बत की चित्रकला--श्री राहुल सांकृत्यायन; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ३

द्विवेदी जी की शैली--श्री प्रेमनारायण टंडन; माधुरी; मार्च '३८

नागौद की प्राचीन मूर्तियां--रायबहादुर पंडित ब्रजमोहन व्यास; सरस्वती; मार्च '३८

निःशुल्क, अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा-प्रचार--श्री महेशचंद, बी० एस्० सी०; सुधा; मार्च '३८

पदमावत (पदुमावती)--श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०; सम्मेलन-पत्रिका; पौष-माघ '९४

पृथ्वी का प्रलय और मनुष्य जाति का सुदूर भविष्य--श्री संतराम, बी० ए०; माधुरी; मार्च '३८

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध'--श्री आत्मानंद मिश्र, एम् ए०; माधुरी; मार्च '३८

प्रगतिशील काव्य-साहित्य--श्री देवीशंकर बाजपेयी, बी० ए०; विशाल-भारत; फ़रवरी '३८

'प्रसाद' की नाटचकला--श्री प्रकाशचंद्र गुप्त; हंस; जनवरी '३८

'प्रसाद' जी की अंतिम कृति--श्री नंददुलारे बाजपेयी, एम्० ए०; वीणा; जनवरी '३८

प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय ज्ञान-संशोधक डाक्टर केतकर--श्री भाष्कर रामचंद्र भाले-राव; माधुरी; मार्च '३८

बघेलखंड का कलचुरि-राज्य--श्री लाल भानुसिंह बाघेल; सरस्वती; फ़रवरी '३८

बाण के काव्य-संबंधी विचार--श्री सूर्यनारायण चौधरी; विशाल-भारत; मार्च '३८

बिहार के भावुक कवि 'द्विज' जी का काव्य--श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र, निर्मल, विश्वमित्र; मार्च '३८

बुद्धधर्म की रूप-रेखा--श्री भदंत आनंद कौशल्यायन; वीणा; मार्च '३८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाट लोग ब्राह्मण हैं या नहीं ?--रावराजा रायबहादुर डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र, तथा रायबहादुर पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र; सुधा; फ़रवरी '३८

भारतीय साहित्य में शरद--श्री शांतिप्रिय द्विवेदी; हंस; फ़रवरी '३८

भारतवर्ष में सिकंदर का पराभव--श्री वनमालीप्रसाद शुक्ल; सरस्वती; मार्च '३८

भोटियों की शिल्पकला--डाक्टर शिवदर्शन पंत, एम् ए०, पी-एच्० डी०; सरस्वती; मार्च '३८

मराठी साहित्य की वर्तमान प्रगति--श्री भास्कर रामचंद्र भालेराव; साहित्य-संदेश; मार्च '३८

महाकवि अलसानि पेद्दना--श्री जे० योगानंदम्; सरस्वती; फ़रवरी '३८

महान् युगप्रवर्तक वैज्ञानिक आचार्य जगदीशचंद्र वसु--श्री श्यामनारायण कपूर; माधुरी; फ़रवरी '३८

मैथिल ग्राम्यगीत के कुछ पहलू--श्री रामइक़बाल सिंह 'राकेश'; हंस; मार्च '३८

रत्नाकर की काव्यकला--श्री शांतिप्रिय द्विवेदी; वीणा; मार्च '३८

राष्ट्रलिपि--श्री मनमोहन चौधरी; हंस; मार्च '३८

राष्ट्रलिपि की समस्या--श्री रामनाथ 'सुमन'; माधुरी; मार्च '३८

लुई पाश्चियर--श्री देवीदत्त शुक्ल; सुधा; मार्च '३८

वर्तमान काव्य-साधना--श्री दीनानाथ व्यास, विशारद; सुधा; फ़रवरी '३८

वर्तमान वैज्ञानिक युग--डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०; वीणा; मार्च '३८

विकासवाद तथा धर्म--श्री मन्मथनाथ गुप्त; माधुरी; फ़रवरी '३८

वेद में कृषि और कृषक--श्री गणेशदत्त 'इंद्र'; विश्वमित्र; मार्च '३८

वेदों में भगवन्नाम महिमा--श्री स्वामी भागवतानंद महाराज; कल्याण; फ़रवरी '३८

शरच्चंद्र--श्री नंदगोपाल सेनगुप्त; हंस; फ़रवरी '३८

शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय--श्री जैनेंद्र कुमार; विशाल-भारत; फ़रवरी '३८

शिक्षा-संबंधी नई योजना--श्री ईलम् चंद्र शर्मा, एम्० ए०; वीणा; मार्च '३८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशु-व्यक्तित्व का विकास——श्री इंद्रमोहिनी सिनहा; विशाल-भारत; मार्च '३८

श्री मद्वल्लभाचार्य——श्री कंठमणि शास्त्री, 'विशारद'; सुधा; जनवरी '३८

समाजवाद——श्री प्रेमनारायण माथुर, एम्० ए०, बी० काम०; विश्वमित्र; जनवरी '३८

सुमेरी संस्कृति का भारतीयत्व——श्री सूर्यनारायण व्यास; सरस्वती; फ़रवरी '३८

संतों ने हमारे लिए क्या किया?——श्री सद्गुरुशरण अवस्थी; सुधा; फ़रवरी '३८

हिंदी एवं द्राविड़ भाषाओं का व्यावहारिक साम्य और उन का हिंदी पर संभावित प्रभाव——श्री ना० नागप्पा; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ३

'हिंदी याने हिंदोस्तानी' में 'संस्कृत' का स्थान——श्री धर्मदेव शास्त्री; सरस्वती; फ़रवरी '३८

हेगेल और मार्क्स——श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, बी० एल्०; विश्व-मित्र; मार्च '३८

हैदरअली——एक इतिहास-प्रेमी; वाणी; फ़रवरी '३८

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था---लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति---लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य---लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध---लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता---लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत---लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६।।)

(७) गोस्वामी तुलसीदास---लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक---संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत---लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट---संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार---लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास---लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी---संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री---संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य---लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज---लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३।।); सादी जिल्द ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी--लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन--लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक--मिर्जा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास--लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल--लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र--लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)।

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)--लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला--लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका--महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम--लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर--लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व--लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना--लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप--लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र--लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य--(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि--लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) मूल्य ॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

078089

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौर-परिवार

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०]

आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक

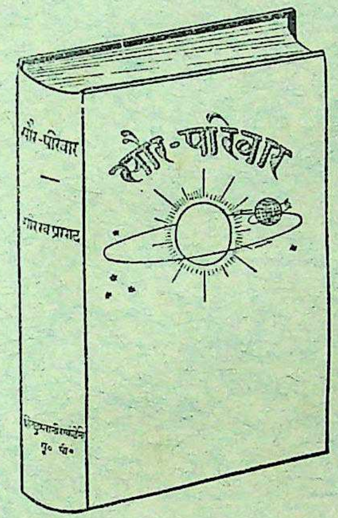

७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र

(जिन में ११ रंगीन हैं)

इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

"इस ग्रंथ को अपने सामने देख कर हमें जितनी प्रसन्नता हुई उसे हमीं जानते हैं। * * जटिलता आने ही नहीं दी, पर इस के साथ साथ महत्त्वपूर्ण अंगों को छोड़ा भी नहीं। * * पुस्तक बहुत ही सरल है। विषय को रोचक बनाने में डाक्टर गोरखप्रसाद जी कितने सिद्धहस्त हैं, इस को वे लोग तो खूब ही जानते हैं जिन से आप का परिचय है।

* * **पुस्तक इतनी अच्छी है कि आरंभ कर देने पर बिना समाप्त किए हुए छोड़ना कठिन है।"**—सुधा।

"The explanations are lucid, but never, so far as I have seen, lacking in precision. * * I congratulate you on this excellent work."

श्री० टी० पी० भास्करन, डाइरेक्टर, निज़ामिया वेधशाला

मूल्य १२)

प्रकाशक—हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

मुद्रक—महेन्द्रनाथ पाण्डेय, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद
प्रकाशक—डाक्टर ताराचंद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar